समर्पण

हिन्दू जाति के और हिन्दी सेवियों

के

कर कमलों में

समर्पित ।

प्रस्तावना ।

आज कल कुछ ऐसा रिवाज सा चल गया है कि चाहे एक चौपतिया ही लिखी जाय परन्तु उस में 'प्रस्तावना' अवश्य होनी चाहिये। अस्तु मैं भी 'लकीर के फ़कीर' की अनुसार कुछ ऊट पटांग लिखे देता हूं। लेखक बनने का तो मुझे दावा है नहीं, क्योंकि न तो मुझ में इतनी बुद्धि है और न इतनी योग्यता। पर स्वामी रामतीर्थ जी के स्वतंत्र विचार और उनका निराला ढंग देख कर मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि स्वामी जी का वचनामृत जो मैंने अंग्रेजी भाषा द्वारा पिया है वह अपने उन भाइयों को भी पिलाऊं जो केवल मातृभाषा देवनागरी सर्वगुण आगरी ही को जानते हैं। इस लिये मैंने स्वामी जी के कुछ लेखों को लेकर हिन्दी भाषा में अनुवाद करना प्रारम्भ किया परन्तु भाषा की अनभिज्ञता के कारण मुझे जो कठिनाइयां उठानी पड़ी हैं वह 'राम' ही जानता है। मुझ से जहां तक हो सका है मैंने स्वामी जी के विचारों को बिना हेर फेर के आप के सन्मुख रखने का प्रयत्न किया है। इस कार्य्य में जो भाषा दोष हों उन्हें आप हिन्दी के विद्यालय के एक अधम कक्षा के विद्यार्थी की भूलें समझ कर क्षमा करेंगे और कृपा करके उन्हें सुधार लेंगे। यदि लोगों ने मेरी इस सेवा को स्वीकार किया तो 'राम' नाम की पाटी लेकर फिर आप के सामने उपस्थित होऊंगा।

मैं अपने उन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हुं जिन्हों ने मुझे इस कार्य्य में सहायता दी है। विशेष करके मैं राय-देवी प्रसाद जी (पूर्ण) का बहुत ही अनुग्रहीत हूं जिन्हो ने मेरे कहने से स्वामी राम के अंग्रेज़ी पद्यों का पद्यानुवाद कर दिया है। अधिकतर पद्य उन्हीं के बनाये हुये हैं।

कानपुर

कार्तिक १९६९

नारायण प्रसाद अरोड़ा

स्वामी रामतीर्थजी का जातीय धर्म ।

माधव शुक्ल द्वारा अंगरेज़ी कविता से अनुवादित ।

एक दिन मैंने मग्न ध्यान में देखा ऐसा दृश्य विचित्र ।
कभी कभी अब भी आता है नेत्र सामने जिसका चित्र ॥

वह सपना था अथवा क्या था मैंने इसको नहिं जाना ।
पर वे कहते थे मुझको "मैं हुआ हूं पागल दीवाना" ॥

किन्तु सूर्य ज्यों ही अस्ताचल जाते हुए दिखाते हैं ।
मेरे दोनों नेत्र आंसुओं से उस दम भर आते हैं ॥

तब फिर वही दृश्य बस मेरे आंखों में छा जाता है ।
औ फूलों से लदा हमारा भारतवर्ष दिखाता है ॥

दिनकर अपनी मन्द चाल से नीचे गिरता जाता था ।
हवा मन्द हो जाने से सब सुनसान दिखलाता था ॥

बहुत दूर पश्चिम से धीरे बहा चला आता था जल ।
फैला ज्यों प्रकाश हो गलकर त्यों अकाश लहरें बादल ॥

उस छनके वह रक्त सूर्य का पड़ने से उन पर आभास ।
छाय गया चहुँ ओर लालिमा का अद्भुत मन हरण विकास ॥

खड़ा हुआ चुपचाप वहां ज्यों ही देखा ये सब सामान ।
उठा एका एक हृदय विदारक गए दिनों का मने ध्यान ॥

बस फिर वही जवानी मेरी औ बचपन सन्मुख आया ।
अगणित महाविचार भार से दबता हुआ हृदय पाया ॥

फिर देखा जो दृष्टि उठाकर गिरते रक्त सूर्य की ओर ।
मानो गत उमंगकी लहरें मेरे हिय बिच उठीं हिलोर ॥

मुर्दे फिर होकर सजीव सब खड़े हुये थे मेरे पास ।
उनके जाल गये हो आये दिये कफन भी दूर निकाम ॥

एक बार फिर पड़ा कान में उनका स्वर बाजे के ढंग ।
तकते थे उस वक्त सूर्य को वे भी मिल कर मेरे संग ॥

ये सब दृश्य देखने पीछे कितने ही दिन बीत गये ।
दुख सुख झेले हुए साल भी तब से कितने बीत गये ॥

दूर दूर यद्यपि घूमा हुं मैं स्वदेश में और अनन्य ।
तब भी मैं डरता हूं अब तक नहीं हुआ हूं मैं चैतन्य ॥

तब से अवसर जब संध्या को रवि जाता है अस्ताचल ।
उसी समय तब भर जाता है फिर मेरे आंखों में जल ॥

वही दृश्य बस फिर मेरे तब आंखों में छा जाता है ।
औ फूलों से लदा हमारा भारतवर्ष दिखलाता है ॥

स्वामी रामतीर्थ ।

सर्वाहि संस्थाः किल भारतस्था,
जानीत यूयं हृदयं मदीयम् ।
आर्याः समस्ताः पथवर्णभिन्ना,
न बांधवाः किंत्वहमेव तेस्युः ॥ '

—राम
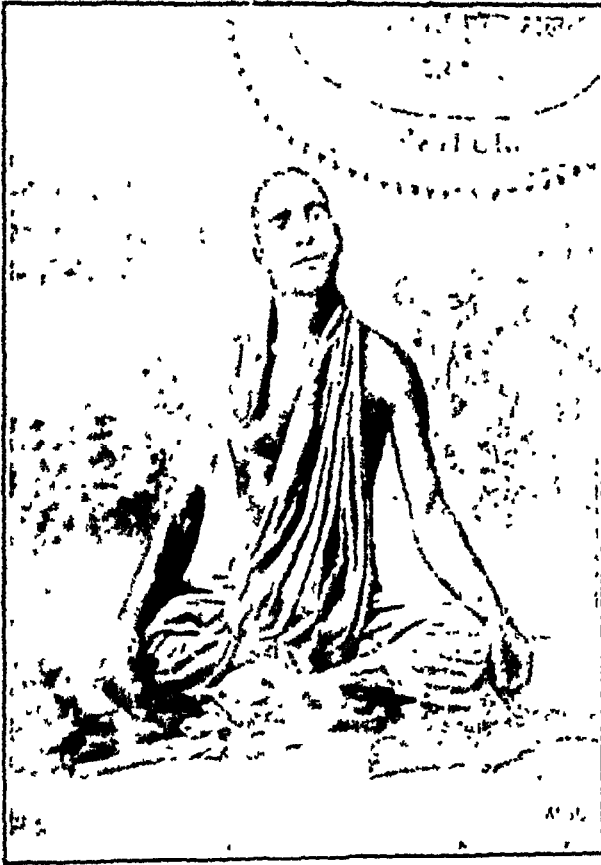
परमहंस श्री १०८ स्वामी रामतीर्थ जी महाराज ।

जीवन चरित्र

ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्होंने परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी का नाम न सुना हो तथा उनके गुणों से परिचित न हों। स्वामी रामतीर्थजी का जन्म सम्वत् १९३० में हुआ था। आप का संसारिक नाम गुसाईं तीर्थरामजी एम-ए-था। हिन्दी रामायण के विख्यात लेखक गुसाईं तुलसीदास जी के वंश में आप उत्पन्न हुए, आप ने पञ्जाब विश्वविद्यालय का एम-ए-पास किया, उसके पीछे कुछ दिनों लाहौर के एक कालिज में आप गणित के अध्यापक थे। अंगरेज़ी, हिन्दी, फ़ारसी और संस्कृत के बड़े विद्वान् होने के अतिरिक्त आप छोटी उमर से ही बड़े विरक्त थे। आप को बालकपन में ही रामायण, महाभारत आदि की कथाएं सुनने में बड़ा प्रेम था। कई बार "कृष्ण" पर व्याख्यान देते २ अथवा भक्ति के विषय में बात चीत करते करते आप गद्गद् हो रोने लगे थे। जिस समय आप अध्यापक थे आप अपने छात्रों को व्यायाम करने और बल प्राप्त करने का भी बहुत कुछ उपदेश दिया करते थे, कारण यह कि आप "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" के अनुसार बलहीन होने को पाप समझते थे। जिस समय आप केवल २६ वर्ष के थे, लाहौर की गलियां आप के लिये असहनीय हो गईं और आप हिमालय की ओर निकल पड़े, बहुत दिनों तक आप श्रीगङ्गा माता के तट पर और हिमालय की गुफाओं और घने जंगलों में तप और योगाभ्यास करते रहे। हृषिकेश के पास ब्रह्मपुरी नामक स्थान पर आप को आत्मा और परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ। पूर्ण वेदान्ती और परमयोगी होकर आप हिमालय से निकले

और फिर आप ने जापान, अमेरिका, मिश्र आदि देशों में घूम कर अनेक व्याख्यान दिये। इनके व्याख्यानों का प्रभाव इतना प्रबल था कि हज़ारों जापान के बौद्ध, अमेरिका के ईसाई और मिश्र के मुसलमान इनको न केवल परम योगी ही किन्तु अपना गुरू भी मानने लगे। आप अपने को प्रायः "राम" कह कर ही पुकारा करते थे।

जिन लोगों को "राम" से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था वे कहते हैं कि उस अनुभवी महात्मा के चेहरे से सचमुच तेज की किरणें निकलती हुई दीख पड़ती थी। प्रेम, निर्भयता और स्वतन्त्रता के मानो आप अवतार ही थे। निःसन्देह दो मिनट आप के चरणों में बैठने से मनुष्य की आत्मा पर वह प्रभाव पड़ता था जो बड़े बड़े व्याख्यान सुनने और स्वाध्याय करने से नहीं पड़ सकता। सचमुच आप की गणना परम योगियों में की जानी चाहिये। जिनके दर्शन मात्र से जन्म जन्मान्तरों के पाप दूर हो जाते हैं। आप अपनी आत्मा को समस्त संसार की आत्मा और समस्त संसार को अपना ही स्वरूप मानते थे।

सम्वत् १९६३ में ३३ वर्ष की आयु में अपनी प्यारी "गंगी" की गोद में ही आप ने शरीर त्याग दिया, जिस समय हम उनकी इस छोटी सी आयु और उनके जीवन के चमत्कारों की ओर दृष्टि डालते हैं तो उनका चरित्र हमको उस बिजली के समान प्रतीत होता है जो इधर कड़की और उधर गई। स्वामी "राम" के लेखों से पाठकों को यह भली भांति मालूम हो जावेगा कि यह पूर्ण संन्यासी और परमयोगी और साथ ही कितने बड़े देश भक्त थे। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि किसी मनुष्य का बिना देश भक्त हुए धार्मिक होना

असम्भव है। कोई पुरुष जिसमें प्रेम का लेशमात्र भी है देश प्रेम को संसार के सब प्रेमों से श्रेष्ठ अवश्य मानेगा। जिसके चित्त में थोड़ी सी भी दया होगी वह देश की दुर्दशा देख कर आंसू बहाये बिना नहीं रह सकता। परमहंसजी के विचार जातीय धर्म और देश भक्ति के विषय में कितने गम्भीर थे यह बात पाठकों को उनके लेखों से विदित हो जायगी।

अब मैं आप का अधिक समय न लेकर स्वामीजी के लेखों का हिन्दी अनुवाद आप को भेंट करता हूं।

जातीय धर्म।

सूर्यास्त का समय है ठंडी सांसे भर भर कर मैं गुनगुना रहा हूं। लिखते समय मेरी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है।

दृश्य एक मैं लख्यों समय एक पुनि सो दरसानो।
सत्य रहो वा असत रहो सोउ मैं नेकहु नहिं जानो॥
मैं नहिं हतो अपीड़ित तेहि छन भाखत हैं जन ऐसो।
तेहि कारन मैं कहि न सकत हौं दृश्य हतो वह कैसो॥
पै अबहूं रवि अथवत जेहि छन ममदृग जल भरि आवै।
देखौं दृश्य सोई पुनि मम प्रिय भारत मोंहि दरसावै॥
दिवस विगत होय रहो शोभ युत पतित भई मंद समीरा।
धीरे २ लेत छिलोरैं पश्चिम बारिधि नीरा॥
गगन नीर धर जलनिधि मांहीं छाई अनुपम शोभा।
अथवत भानु लालिमा चहुं दिशि देखत ही मन लोभा॥
छाई.नीर. ..... जल की छटा अनूपम .....।

भूतकाल की सुरति भई मोंहि जो अति विस्मयकारी ॥
युवा बालपन आगे आयो हिय मम भयो दुखारी।
मैं तब ही अविलोकन लाग्यो डुबत भानु अरु तारी ॥
भूतकाल मम आगे आयो मृतक पुरुष ढिग लाई।
जीवित सबै लखाने फिर से कफन वस्त्र को छाई ॥
उनकी बानी दुन्दुभी के सम पुनि मम कान सुनाई।
पुनि गनके अरु मम दृग लागे लखै भानु जकनाई ॥
तब से बहुत दिवस हैं बीते सुख दुख दोनों भयऊ।
घुमो दूर २ के देशन पै हिय व्याधि न गयऊ ॥
दिवस अंत दृग सजल होत जब दृश्य यही दरस्मावै।
मम प्रीतम भारत तेहि अवसर मेरे सन्मुख आवै ॥

हे अस्त होने वाले सूर्य्य! तू भारत में निकलने को आ रहा है। क्या तू कृपा करके राम का यह संदेशा उस ज्योतिर्मय भूमि को ले जायगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु बिन्दु भारत के खेतों में पहुंच कर ओस के बिन्दु बन जांय। जैसे शैव शिव की पूजा करता है वैष्णव विष्णु की, ईसाई ईसा की और मुसलमान मुहम्मद की उपासना करते हैं वैसे ही प्रेम में लीन होकर मैं भारत के हृदय को अपने हृदय में लाकर उसकी पूजा करता हूं। जिस समय मुझे कोई भारतवासी दिखाई पड़ता है चाहे वह शैव हो या वैष्णव, ईसाई हो या मुसलमान, पारसी हो या सिक्ख सन्यासी हो अथवा पेरिया, हर एक भारत माता के लाल को मैं मूर्तिमान भारत ही समझ कर उसकी पूजा करने लगता हूं। हे भारतमाता मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूं। तू ही मेरी गंगी है। तू ही मेरी काली है। तू मेरा इष्ट देव है, तू ही सालिग्राम है। भगवान कृष्णचन्द्र जिनको भारत की मिटी खाने का प्रेम था, उपासना का उल्लेख

करते समय कहते हैं--"जिनका चित्त निराकार की ओर लगा हुआ है उनके लिये कठिनाइयां बहुत हैं। क्यों कि निराकार के मार्ग पर चलना देहधारी के लिये अति दुष्कर है।"

मेरे प्यारे कृष्ण! मैं भी उस देवता की उपासना करता हूं "जिसकी सारी सम्पत्ति केवल एक टूटी हुई खाट, एक पुरानी कुल्हाड़ी, भस्म, सांप और एक खाली कपाल है।" क्या यह महिम्न स्तोत्र के महादेव हैं? नहीं! नहीं!! ये साक्षात्कार नारायण स्वरूप भूखे भारतवासी हैं। यही मेरा धर्म है और भारत के प्रत्येक मनुष्य का धर्म उन सब का मार्ग उनका व्यवहारिक वेदान्त और उनकी दिव्य भक्ति ऐसी ही होनी चाहिये। केवल सहानुभूति मात्र दिखलाने अथवा थोड़ी सी सहनशीलता प्रकट करने ही से काम न चलेगा। मैं भारतमाता के प्रत्येक पुत्र से आशा करता हूं कि वह दिनों दिन बढ़ने वाली इस महान शक्ति को चारों ओर फैलाने में कटिबद्ध होंगे। इस संसार में कोई बच्चा बाल्यावस्था को पार किये बिना युवावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी तरह मनुष्य उस समय तक ईश्वर में लीन होने के आनन्द को अनुभव नहीं कर सकता जब तक वह मातृ भूमि के अस्तित्व में अपने अस्तित्व को मिटा न दे, और जातीय अभिमान उसके रोम २ में व्याप्त न हो जाए। भारत के प्रत्येक पुत्र को समस्त देश की सेवा के लिये तत्पर रहना चाहिये क्योंकि प्रत्येक भारत पुत्र भारत माता का मूर्तिमान् स्वरूप है। भारतवासी अपने देश के प्रत्येक नगर, नदी, पर्वत, शिला पशु और पक्षी को पवित्र समझते आये हैं। क्या अभी वह समय नहीं आया कि जब इस सम्पूर्ण मातृ भूमि को देवी मानें और उसका प्रत्येक रूप हमारे चित्त में स्वदेश भक्ति उत्पन्न करे? जब प्राण प्रतिष्ठा से हिन्दू लोग दुर्गा

की मूर्ति को जीवित शक्ति मान लेते हैं तो क्या यह उचित नहीं है कि हम मातृभूमि रूपी लक्ष्मी दुर्गा की निज ज्योति को प्रज्वलित करें और उसमें तेज और जीवनी शक्ति उत्पन्न करें ? आओ ! हम लोग पहिले अपने हृदयों को एक करें। फिर हमारे मन-हमारे हाथ आप ही आप मिल जायंगे।

संसार के महान् उपदेशक और महान् योद्धा योगिराज कृष्ण भगवान कहते हैं कि "मनुष्य अपनी श्रद्धा या विश्वास ही से बना हुआ है जिसकी जिसमें श्रद्धा होती है उसके अनुसार ही उसका स्वभाव होता है।"

मेरे प्यारे भारत के सनातन धर्मियो ! शास्त्रों का ठीक २ उपयोग करो। देश और धर्म तुम से कह रहा है कि जाति पांति के कठिन बन्धनों को कुछ ढीला कर इन अनुचित भेदों को जातीय अथवा राष्ट्रीय सहानुभूति तथा ऐक्य के आधीन कर दो। देखो ! जिस भारतवर्ष ने सारी दुनिया के भागे हुए शरणागतों को अपनी गोद में रक्खा और पृथ्वी की अनेक जातियों को भोजन दिया आज उस भारत के प्यारे पुत्र टुकड़ों को तरस रहे हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपना कार्य और अपनी जाति नियत करने में पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये। अपने २ सिर को चाहे जितना ऊंचा रक्खो परन्तु पैर सब के सदा समान भूमि पर ही रहने चाहियें। किसी किसी के कंधे वा गर्दन पर पैर मत धरो चाहे वह दुर्बल और आज्ञाकारी ही क्यों न हो।

होनहार सुधारक युवको ! भारतवर्ष के प्राचीन धर्म और उसके अध्यात्म की निन्दा मत करो। भारत वासियों में फूट का एक नया बीज बो देने से उनमें एकता उत्पन्न करना

दुष्कर हो जायगा । भारतवर्ष की अवनति के कारण यहां के धर्म और अध्यात्म नहीं हैं । भारत की फूली फली वाटिका इस लिये लुट गई क्योंकि उसके इधर उधर कांटे और झाड़ झंकार न थे । कांटे और झाड़ झंकार चारों ओर लगा दो परन्तु उन्नति और सुधार के बहाने उन गुलाबों और फलदार वृक्षों को मत उखाड़ो जो क्यारियों के बीच में लगे हुए हैं प्यारे कांटे और झाड़ियो ! तुम धन्य हो तुम्हीं बचाने वाले हो । भारतवर्ष में तुम्हारी ही आवश्यकता है ।

जब मैं इस प्रकार के कार्यों की प्रशंसा करता हूं तो मेरा यह मतलब नहीं कि मैं तमोगुण को रजो गुण और सतो-गुण से श्रेष्ठ समझता हूं किन्तु मेरा अभिप्राय यह है कि भारतवर्ष में हम लोगों ने तमोगुण का बहुत दिनों तक निरादर किया और इस निरादर करने से ही तमोगुण हम में बेहद बढ़ गया । अब हमको चाहिये की तमोगुण का प्रयोग करना सीखें और उसको उपकारी बनावें । यदि हम मैली खाद को फेंकदें और उसको काम में न लावें तो वाटिका हमारी हरी भरी कैसे हो सकती है ।

तमोगुण रूपी कोयले के बिना रजोगुण रूपी अग्नी और भाप तथा सतोगुण रूपी प्रकाश नहीं हो सकता और जिस देश में कोई आन्दोलन करना हो उसमें तमोगुणी प्रकृति जितनी ही अधिक होगी राजसी अग्नी और सात्विक प्रकाश भी उतना ही अधिक होगा । यह विचार वर्तमान मस्तिष्क सामुद्रिक (Phrenology)के विचारों से बिलकुल मिलता जुलता है । इससे स्पष्ट है कि वीरता के महत्व और चरित्र के बल के लिये केवल सदाचार और बुद्धि का बढ़ाना ही काफ़ी नहीं है किन्तु मनुष्य में तामसिक वा पाशविक बल भी पूर्ण-

रूप से होना चाहिये । यही कारण है कि हिन्दुओं ने महादेव को तमोगुण का अधिपति माना है ।

यदि भारत के इस संकट के समय में हमारा जन्म हुआ है तो हमें परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिये, क्योंकि हम को अपने देश वासियों की सेवा करने का विशेष अवसर मिला है । हमारा काम बहुत ही निराला, सुरीला और विकट है । मसल मशहूर है कि "जो ख़ूब सोता है वह ख़ूब जागता है" । भारतवर्ष ख़ूब सोया, इसी कारण उसका जागना भी विचित्र ही होगा । हम को भारतवर्ष के लोगों में गुणग्राहकता, भ्रातृभाव, परिश्रम का महत्व और देश की विविध शक्तियो को एक दूसरे के आधीन कर उन सब से काम लेने की समझ उत्पन्न करना है । कोरी नुकताचीनी से काम न चलेगा ।

हा ! इस देश की कितनी शक्ति एक सम्प्रदाय के दूसरे सम्प्रदाय को गालियां देने में व्यर्थ जा रही है । हमें उन सिद्धान्तों का पता लगाना चाहीये जिन में हम सब सहमत हैं और उन्हीं पर ज़ोर देना चाहीये । कुछ मनुष्यों पर आर्य-समाज ही का असर हो सकता है सनातन धर्म का नहीं, कोई २ ऐसे हैं जिन्हें ब्रह्म समाज ही अच्छा लगता है । किसी किसी को वैष्णव धर्म ही प्रिय है । इसी प्रकार और सम्प्रदायों का भी यही हाल जानिये । हमें क्या अधिकार है कि हम उस मनुष्य को दूषित ठहरावें जो हमारे सम्प्रदाय का नहीं है, और जो उस सम्प्रदाय पर चलने से बल और आनन्द की आशा नहीं करता ।

जो हमारे साथ आना चाहते हैं वे आवें, जो ठहरना चाहें ठहरें और जो न ठहरना चाहें न ठहरें । दुनियां कुछ कहे हमें

अपने काम से काम । हमें या तुम्हें क्या अधिकार है कि सब किसी को अपने सम्प्रदाय का ही बनालें । मेरा काम तो केवल सब किसी की सेवा करना है--सेवा उनकी जो मुझ से प्रेम रखते हैं और साथ ही उनकी भी जो मुझ से घृणा करते हैं (यदि कोई ऐसा हो) माता उन्हीं बच्चों से अधिक प्रेम रखती है ;जो अधिक निर्बल होते हैं । क्या वे सब ही लोग जो तुम से सहमत नहीं हैं भ्रम में पड़े हुए हैं ? यदि ऐसा हो भी तो उनकी भी देश को आवश्यकता है । उस चलने वाले की दशा कितनी बुरी होगी जिसको केवल एक ही टांग से फुदकना पड़ता हो । सच्चा ज्ञान यही है कि प्रत्येक वस्तु को ईश्वर की दृष्टि से देखा जाए ।

"हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ।
समदरशी है नाम तिहारो सोई पार करो ॥
एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परो ।
यह दुविधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो ॥

एक नदिया एक नार कहावे मैलो नीर भरो ।
जब मिलिया तो एक वरन भयो गङ्गा नाम परो ॥
एक माया एक ब्रह्म कहावै शूर श्याम झगरो ।
भव सागर से पार मोहिं नहि प्राण जात टरो ॥
हमारे प्रभु अवगुण० ॥

व्यक्तिगत धर्म और स्थानीय धर्म की अपेक्षा देश वा जाति की ओर जो कुछ हमारा धर्म है उसको अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिये । प्रत्येक वस्तु का ठीक २ परिणाम रखने से ही कार्य सिद्ध होता है ।

कोई ऐसा कार्य करना जिससे देश वा जाति की उन्नति हो, देवताओं की दिव्य शक्ति की सहायता करना है । आज

भारत माता के सामने इस प्रकार के यज्ञ तथा बलि की ही आवश्यकता है गीता के निम्न लिखित श्लोक में भी इसी यज्ञ का आदेश है ।

"यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यंते सर्वकिल्विषैः ।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात् । "

अर्थ—वे सज्जन जो यज्ञ का बचा हुआ अन्न खाते हैं सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जो लोग केवल अपना ही पेट भरने का प्रयत्न करते हैं वे मानों पाप खाते हैं ।

ईश्वर का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये संन्यासी का सा भाव रखना चाहिये अर्थात् स्वार्थ को बिलकुल त्याग कर देश के महान अस्तित्व में अपने छोटे से अस्तित्व को मिटा देना चाहिये । ईश्वर या पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिए सच्चा ब्राह्मण बनना चाहिये, सच्चा ब्राह्मण वह है जो अपनी बुद्धि को देश की उन्नति के साधनों पर विचार करने में ही लगाए रक्खे, पूर्णानन्द का अनुभव करने के लिये क्षत्री भाव का होना आवश्यक है । सच्चा क्षत्री वह है जो प्रतिक्षण अपने देश के लिये अपने जीवन की आहुति देने को प्रस्तुत रहे । परमात्मा को पाने के लिये तुम्हें सच्चा वैश्य बनना चाहिये । सच्चा वैश्य वह है जो यह समझता हो कि उसका सब धन धान्य उसको केवल इस लिये दिया गया है कि वह अपने देश और जाति की सेवा में उसको व्यय करे । परन्तु इस लोक या परलोक में पूर्णानन्द अर्थात् "राम" को लाभ करने के लिये अथवा अपने अमूर्त धर्म को मूर्तिमान बनाने के लिये तुम्हें पूर्ण सन्यासी अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी कुछ बनना चाहिये और शूद्रों के समान वीरता के साथ अपने

हाथों और पैरों से भी काम लेना चाहिये। संन्यासियों का सा भाव रक्खो और शूद्रों को सी मेहनत करने को तैयार रहो। आज दिन मुक्ति का केवल मात्र यही एक उपाय है। जागो! उठो! अब सोने का समय नहीं रहा!

आज कल अन्य देश भी जगद्गुरू भारतवर्ष को अपने व्यवहारों द्वारा यही शिक्षा दे रहे हैं। जिस समय एक जापानी युवक इस कारण सेना में भरती करने से इन्कार किया जाता है कि उसकी बूढ़ी माता की सेवा करने के लिये पीछे कोई न रहेगा, उस समय वही बूढ़ी माता जातीय धर्म को गृह धर्म से अधिक श्रेष्ठ समझती हुई आत्म हत्या कर लेती है इस लिये कि उसके पुत्र को अपने देश के युद्ध में अपने जीवन की आहुति देने का अवसर मिले।

आदर्श गुरू गुरुगोविन्द सिंह जी के जातीय धर्म का पालन करने के लिये व्यक्ति गत धर्म, गृहधर्म और सामाजिक धर्म को त्याग देने के समान वीरता का कार्य और क्या हो सकता हैं? लोग शक्ति प्राप्त करने की लालसा रखते हैं, परन्तु उस समय, तुम्हारी शक्ति कितनी उत्पन्न होगी जिस समय तुम्हारी छोटी सी आत्मा देश की महान आत्मा में लीन हो जावेगी। अन्त में मैं इस ज्वलन्त शक्ति का उदाहरण इस्लाम के पैग़म्बर के सुन्दर शब्दों में देता हूं—"यदि सूर्य मेरे दाहिने ओर और चन्द्रमा बांये ओर खड़े होकर मुझ से पीछे हटने को कहें तोभी मैं उनकी आज्ञा का कदापि पालन न करूं।" ओम्! ओम्!! ओम्!!!

हम रूखे टुकड़े खायेंगे। भारत पर वारे जायेंगे॥
हम सूखे चने चबायेंगे। भारत की बात बनायेंगे॥
हम नंगे उमर बितायेंगे। भारत पर जान मिटायेंगे॥

सोलों पर दौड़े जायेंगे। कांटों को राख बनायेंगे॥
हम दर दर धक्के खायेंगे। आनन्द की झलक दिखायेंगे॥
सब रिश्ते नाते तोड़ेंगे। दिल एक आतम संग जोड़ेंगे॥
सब विषयों से मुंह मोड़ेंगे। सर सब पापों का फोड़ेंगे॥

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकतायें।

पहले पत्र के सिलसिले में राम अपने मन के सर्वोपरि विचार प्रकट करता है। राम की कुटी की खिड़की के बाहर कुवारी (पवित्र) बर्फ़ के सुन्दर टुकड़े यद्यपि बहुत वेग से गिर रहे हैं तथापि उनकी शोभा बहुत अपूर्व है और सब पहाड़ बिलकुल 'शुशता' हो रहा है अर्थात् घुल गया है। राम ने अभी 'विकास' (Evolution) की सब से नई पुस्तक पढ़ कर रख दी है।

नवीनता, प्रतिष्ठा किंवा लोक प्रियता प्राप्त करने की इच्छा बहुधा लोगों को सत्य के मार्ग से पृथक रखती है। इस तरह की इच्छा को एक तरफ़ छोड़ कर और मन को शान्त रख कर अर्थात् दुःख से निराश न होकर और आत्म प्रशंसा (Self flatter) से फूल कर यदि हम भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं के प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमारे सामने उसकी ऐसी शोचनीय स्थिति उपस्थित होती है कि हम अवाक रह जाते हैं। एक ही पवित्र देश में रहने से जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है उसकी हम बिलकुल ही परवाह नहीं करते। और इसका तात्पर्य्य यह निकलता है कि हम में बन्धुत्व प्रेम का पूरा अभाव है। धार्मिक पन्थ के भेदों ने लोगों के मनुष्यत्व को ढक दिया है, राष्ट्रीयत्व की कल्पना को प्रायः लोप ही सा कर रक्खा है।

अमेरिका में भी कदाचित् अधिक नहीं तो हिन्दुस्तान के बराबर तो अवश्य ही पन्थ और मार्ग हैं। परन्तु थोड़े से उन कृती लोगों को छोड़ कर जिनकी जीविका उनके पन्थ पर निर्भर है बाकी सब लोगों में यह कभी नहीं देखा जाता है कि वह अपने देश बन्धुता के भाव को अपने धार्मिक पन्थ की कल्पना के भावों के आधीन रक्खें, और यह विचार करें कि अमुक मनुष्य कैथोलिक है और अमुक मनुष्य मेथोडिस्ट है अथवा प्रेसबिटेरियन है। निष्पक्षपात सत्य कहते हुए यह मानना पड़ेगा कि नाम मात्र का धर्म्माभिमान अमेरिका के लोगों में स्वाभाविक मनुष्यता किंवा प्राणिमात्र पर दया का लोप नहीं कर देता जैसा कि भारत में होता है। हिन्दुस्तान में मुसलमान लोगों को एक साथ और एकही जगह रहते हुए कई पीढ़ियां व्यतीत हो गईं परन्तु हिन्दुस्तान में अपने पास रहने वाले हिन्दुओं की अपेक्षा वह दक्षिण योरप के तुर्कों के साथ अधिक सहानुभूति दिखाते हैं। एक बालक जो हिन्दू मा बाप के रक्त मांस से बना है और ज्योंहीं वह क्रस्तान होता है त्योंहीं वह रास्ते के कुत्तों से भी ज्यादा अनजान अथवा अपरिचित बन जाता है। मेथुरा का एक कट्टर द्वैतवादी वैष्णव दक्षिण के एक द्वैतवादी वैष्णव के लाभ के लिये क्या नहीं करता, परन्तु वही वैष्णव अपने ही शहर के एक अद्वैतवादी वेदान्ती का मान भंग करने के लिये क्या उठा रखता है। यह सारा दोष किसका है ? सब पन्थों के पक्षपात और ऊपरी ज्ञानही का यह दोष है, 'एकही जगह रहने वाले शत्रु''—ऐसा जो वाक्य है वह वर्तमान स्थिति का यथार्थ रूप से वर्णन करता है। एक राष्ट्रीयता का विचार मात्र भी एक अर्थ रहित शब्द हो गया है। इसका कारण क्या है ? इसका वास्तविक कारण निर्जीव भूतकालीन विधि

का अन्धे होकर समर्थन करना और धर्म के पवित्र नाम से जो विचित्र और वेहद अज्ञान की शिक्षा दी जाती है उसके पूर्णतया दास होनाही है। अर्थात (तस्मात् शास्त्र प्रमाणन्ते) प्रमाण पालन का चिकना चुपड़ा नाम देकर आध्यात्मिक आत्मघात करना है।

केवल उदार शिक्षा, यथार्थ ज्ञान, सप्रयोग परीक्षण, अथवा तत्व शास्त्रीय विचार की पद्धति के अभ्यास से यह असत्य कल्पना दूर हो सकती है अन्यथा नहीं। आधुनिक शास्त्रशोधन से निकले हुए उत्तम और मनुष्य कर्तव्य सिखाने वाले तत्त्व जिस पंथ या धर्म में न हों उसे कदापि यह अधिकार नहीं है कि वह अपने भोले भक्तों पर उपजीविका करे। प्राचीन काल के बहुत से धार्मिक तत्त्व और प्रथायें राम के मत से तो केवल उस समय के जाने हुए शास्त्र के नियम और सिद्धान्त थे। परन्तु वाहरे दुर्दैव! वह तत्व जो पहले बड़े विरोध से माने गये फिर इस उत्तेजना के साथ माने गये कि उनको जन्म देने वाली माता अर्थात् स्वतन्त्र विचार और निदिध्यासन को बिलकुल ही भुला दिया गया और बालकों को खिलाते खिलाते माता के प्राण लिये गये।

धीरे २ वह तत्व यहां तक मान लिये गये कि एक बालक यह समझने के पहले कि मैं मनुष्य हूं अपने को ईसाई मुसलमान अथवा हिन्दू कहने लगा। जब धर्म पर चलने वालों के आलस्य के कारण, लोगों और पुस्तकों के प्रमाणों और ग्रन्थों के विस्तार पर, धार्मिक तत्व और नियम माने जाने लगे और जब स्वयम्-अभ्यास, नवीनता की खोज चातुर्य और ध्यान इत्यादि, जिससे धर्म संस्थापकों ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक ढूंढने और उसके नियमों का

दक्षता के साथ अभ्यास किया था, लोप होने लगे, तब सृष्टि नियमानुसार धर्म की अवनति आरम्भ हो गई। धीरे २ ईसा मसीह के पहाड़ी उपदेश अथवा वैदिक यज्ञों के असली उद्देश्यों को तिलांजली दी जाने लगी और उनकी जगह केवल खाली नामों से भरी जाने लगी, और लोगों की निष्ठा इन्हीं पर अधिक बढ़ने लगी। केवल इतना ही नहीं हुआ किन्तु निर्जीव कलेवर की पूजा करने की अभिलाषा से आत्मा बाहर निकाल कर फेंक दी गई। इस प्रकार ईसा, मुहम्मद, व्यास, शङ्कर इत्यादि सरीखे सत्यनिष्ठ महात्माओं को ईश्वर का प्रतिनिधि या पैगम्बर का नाम देकर कलङ्कित किया जाने लगा (क्योंकि पैगम्बर ईश्वरी तेज के हरण करने वाले को कहते हैं)। और प्रकृति के मूल ग्रन्थ के सामने रखकर उनके ग्रन्थों का अपमान किया जाने लगा, क्योंकि प्रकृति के मूल ग्रन्थ ही से उन लोगों ने इधर उधर का थोड़ा बहुत ले लिया था।

राम के कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि लोक संग्रह के लिये इन धार्मिक रीतियों का कोई उपयोग ही न था। किसी समय उनका उपयोग अवश्य था। इन रीतियों की आवश्यकता ठीक वैसी ही थी जैसे किसी बीज की बाढ़ के लिये। आवश्यकता है कि वह बीज एक ढकने (खोल) से कुछ काल तक ढका रहे। परन्तु उस नियमित काल के पश्चात् अर्थात् उस बीज के कुछ उगने पर यदि वह ढकना नहीं गिरेगा तो वह बढ़ते हुये दाने के लिये एक कारागार बन जायगा और उसकी बाढ़ को रोकेगा। हमें दाने का विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि ढकने को गिराने के लिये अर्थात् उन जकड़नेवाले छिलकों के निवारण को दूर करने के लिये और प्रकृति के ग्रन्थ को पढ़ने के लिये हर एक मनुष्य

को यह अनुभव करना आवश्यक है कि एक पैगम्बर (भविष्य वक्ता) की शक्ति मेरी भी बपौती (Birth right) है और उस में कोई बात अप्राकृतिक नहीं है ।

बहुधा लोगों के ध्यान में किसी मकान का ढांचा या नक्शा उस समय तक नहीं समाता जब तक कि मकान बनकर उनके सामने तैयार न हो जाए । इसी प्रकार कुछ ऐसे लोग भी हैं जिसके ध्यान में वर्तमान काल अथवा भूत काल से एक परमाणु भी आगे बढ़ने का विचार नहीं आता । परन्तु आशा की जाती है कि ऐसे लोगों की संख्या भारतवर्ष में बहुत न्यून होती जाती है । वृद्धि करने वाले वेदान्त (Dynamic Vedantes) का अभिप्राय जैसा राम ने समझा है, यह है कि लोगों को अनिश्चित उतार चढ़ाव के उस पार कर दे और उनकी प्राकृतिक प्रतिभा की, ऐक्यता का, और जिस से वह मिलें उससे मित्रता का, अनुभव करा दे और स्वाभाविक भेद भावों से एक स्थायी वो प्राकृतिक मेल प्राप्त करा दे । इस वेदान्त की आवश्यकता है ।

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, प्रेम और ज्योति को फैलाने के लिये राम एक सच्चा मठ (जीवन संस्था) खोलने के लिये प्रस्ताव करता है, जिसका विशेष विवरण छोड़ कर संक्षेप वर्णन यह है ।

धर्मऔर दर्शन

इस मठ में पहले भिन्न २ धर्मों और दर्शनों का मुकाबिला (प्रतियोगिता) के साथ अध्ययन किया जायगा । अभिलाषियों को पुराने और नये धर्मों और दर्शकों को न्यायकारी या साक्षी की भांति पक्षपात रहित होकर अध्ययन करने में सहायता दी जायगी । हर एक विद्यार्थी को अपनी योग्यतानुसार धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन करना पड़ेगा और यदि

आवश्यकता होगी तो कोई अध्यापक अवश्य सहायता देगा। सायङ्काल के समय सम्पूर्ण सभा के सन्मुख उस विद्यार्थी ने जो कुछ दिन भर में पढ़ा है, उसे सब वर्णन करना पड़ेगा और उसे यह भी वर्णन करना पड़ेगा कि पढ़ने के समय उसके मन में क्या २ विचार उत्पन्न हुए थे। इन संक्षिप्त आवेदनों को सुनकर हर रात्रि को राम की ढंग रेल में एक छल बीन करने वाली किन्तु आदरणीय वार्तालाप इस अभिप्राय से हुआ करेगी कि जिन विषयोंको सब के भिन्न २ सभासदों ने अध्ययन किया है उनमें मेल प्रकाश किया जावे। इस प्रकार आपस में मेल और प्रेम बढ़ेगा और हर एक सभासद् दूसरे सभासदों के मानसिक परिश्रम से लाभ प्राप्त करेगा। और उसके बदले में अपने मानसिक परिश्रम के फल को सब के सन्मुख उपस्थित करेगा। वर्तमान आवश्यकतानुसार एकट्ठे होकर एक साथ काम करने से मानसिक कार्य के प्रभावों का अधिक प्रचार होगा और सची विद्या का विकास होगा।

नये प्रवेश हुये विद्यार्थियों को धर्म और दर्शन की सहायता से, जिसकी मांग भारतवर्ष में बहुत है, मेल के साथ विद्याध्ययन पद्धति का स्वाद चखाया जायगा और फिर साइन्स की भिन्न २ शाखायें अर्थात् जड़ी बूटी की विद्या, पशुओं की विद्या, बिजली (विद्युत शास्त्र), पशुओं की भूगर्भ विद्या, रसायन विद्या, खगोल विद्या आदि भी उनके अध्ययन में प्रवेश की जायेंगी। इन विद्याओं को उनके कोर्स में प्रवेश करते ही एक पुस्तकालय और रसायन विद्या का कारखाना और अवलोकन भवन और इस प्रकार के बहुत से दूसरे भवन स्थापित हो जायेंगे।

तत्व शास्त्र

इस मठ में उपरोक्त विद्याओं का प्रचार करने से यह अभिप्राय है कि थोड़ा सा प्रकट (चमकता हुआ) धार्मिक मिथ्याबोध दूर हो जावे। लोगों का परिश्रम और पराक्रम अधिक लाभदायक और बुद्धिमत्ता के कार्यों में लग जावे। इस मठ में साइन्स का पटनपाठन धार्मिक उत्तेजना के साथ होगा। विद्या, शिल्प तथा और २ काम भी जो देखने में लौकिक प्रतीत होते हैं, यहां इस अभिप्राय से प्राप्त किये जायेंगे कि वेदान्त की आत्मा का संगठन काम काज के साथ कर दिया जाय, अर्थात् अभ्यासयुक्त अमली वेदान्त प्राप्त हो। कहा जाता है कि अगेसिज़, जो पदार्थविद्या का एक बड़ा भारी पंडित था, अपने रसायन भवन को गिरजाघर से कम पवित्र नहीं समझता था और न किसी भौतिक तत्व को एक नैतिक तत्व से कम समझता था। प्रकृति की भिन्न २ वस्तुओं में एक ही व्यवस्था का पता लगाना उसके समीप परमात्मा के विचारों को फिर से विचार करना था।

कारीगरी और शिल्प विषय

ठीक समय पाकर इस मठ में एक तीसरा भाग भी आरम्भ किया जायगा अर्थात् कला कौशल और शिल्प विद्या का भी प्रारम्भ किया जायगा। क्योंकि कला कौशल और शिल्प विद्या की आजकल भारतवर्ष में विशेष न्यूनता है। इस शोचनीय अवस्था के विषय में इस समय कहने की कुछ आवश्यकता नहीं मालुम होती।

अमेरिका और यूरोप के कई बड़े २ विश्वविद्यालय जैसे एल, हारवर्ड, स्टेनफोर्ड, शिकागो इत्यादि, लोगों के निज के (private) विश्वविद्यालय हैं। बड़े शोक की बात है कि भारत के लोग अपनी शिक्षा के लिये सरकारी शिक्षा का मुंह निहार रहे हैं और अपनी आवश्यकताओं पर किञ्चितमात्र भी ध्यान नहीं देते।

इस जीवन मठ में, जिसका राम ने प्रस्ताव किया है, महा कट्टर और घोर नास्तिक पुरुषों का आदर और स्वागत तत्त्व-निर्णय के विचार से किया जायगा। इस मठ का शास्त्र वाक्य यह होगा, "सत्य, पूर्ण सत्य और केवल अव्यवच्छिन्न सत्य।"

राम स्वामी

राम का सन्देश।

(यह लेख स्वामी राम ने लाला हरदयाल जी लाहौर के भारतीय युवक मंडल के वार्षिकोत्सव पर पढ़ने के लिये भेजा था)

भारत के सामने प्रश्न।

एकता, एकता, सब को एकता की आवश्यकता मालूम होती है। इस देश की लाखों शक्तियां एक दूसरे का अनहित कर रही हैं और कोई फल देने वाली शक्ति नहीं पैदा होती। करोड़ों मस्तिष्क लगे हुए हैं, करोड़ों हाथ काम कर रहे हैं परन्तु यह नहीं मालूम होता कि किधर बहे चले जा रहे हैं। हज़ारों सम्प्रदायें और सभायें अपनी इच्छा के अनुसार इस राष्ट्र नौका को खेने का प्रयत्न कर रही हैं परन्तु नियमानुसार कोई काम ही नहीं होता। मित्रो! बल्लियों को जहां का तहां रहने दो। अपनी जगह न छोड़ो, ज़रा भी अपनी जगह से न हटो, किन्तु एक ही दिशा को खेते चले जाओ। ऐसी एकता अर्थात् भिन्न २ होने पर भी एकता बनी रहने ही से उन्नति होती है। इस तरह अपनी २ जगह पर काम करते रहो और मल्लार गाते रहो पर आगे बढ़े जाओ। राष्ट्र हित तुम से यह चाहता है कि सब के हित में अपना हित समझो।

इस प्रकार वक्तृत्व करना तो बहुत सहल है परन्तु इतने दिनों से भारतवर्ष में प्रेम और एकता का अभाव क्यों विराजमान है?

इस के मुख्य कारण यह हैं:—

(क) व्यवहारिक ज्ञान का दारिद्र्य ।

(ख) मनुष्य संख्या की अधिकता ।

इन दोनों कारणों में से हम पहले व्यवहारिक ज्ञान के दारिद्र्य पर विचार करते हैं ।

मुसलमानी राज्य होने के पहले खुरासान के अल्बरूनी नामी एक मनुष्य ने इस समग्र देश की यात्रा की थी। वह ज्ञान सम्पन्न तत्वज्ञानी और बड़ा भारी पंडित था। उसने संस्कृत भाषा पढ़ी और जैसे उसने प्लेटो और एरिस्टॉटल के ग्रन्थ पढ़े थे उसी तरह हमारे धर्म्म शास्त्रों का भी अध्ययन किया। जैसा उसने हिन्दुस्तान को पाया था उसी प्रकार उसने इस देश का सविस्तार वर्णन किया है। हिन्दू तत्वज्ञान काव्य और ज्योतिष को वह बहुत प्रशंसा करता है, और जिन पंडितों से वह मिला था उनकी विद्वत्ता की बहुत सराहना करता है। परन्तु स्त्रियों और सामान्य जन समूह की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर उसने बहुत शोक प्रगट किया है। उसने लिखा है कि नैतिक और धार्मिक रूप से वह महापतित और अनाथ है सामाजिक, धार्मिक और राजनीय विभागों में वह बटे हुए हैं। वह ठीक २ विचार भी नहीं कर सकते हैं। उनके शरीर बहुत दुर्बल हैं। उन मुसलमानों के सामने जिन्हें लेकर महमूद ग़ज़नी हर साल लूट मार करने आया था, वह लोग क़वायद न जानने के कारण रजकण की तरह उड़ जाते थे। इस के पश्चात् बाबर हिंदुस्तान के लोगों के विषय में लिखता है कि यहां के लोगों के प्रत्येक कार्य्य में चातुर्य्यता, प्रवीणता और नवीनता की कमी है। इनके पास उद्योग सम्बन्धी ग्रन्थ ही नहीं हैं। शिल्प, का इन्हें ज्ञान नहीं है। इनके यहां न तो बग़ीचे हैं और न नहरें हैं; और यहां

पर कोई बारूद का नाम भी नहीं जानता है। ये लोग स्वतं-त्रता पूर्वक एक दूसरे से मिलने के अयोग्य हैं। यदि हम ऊपर के बयान से व्यक्तिगत द्वेष भावों को निकाल डालें और जो कुछ बढ़ा कर कहा गया है उसे ठीक करलें तो भी हमें शोक के साथ कहना पड़ता है कि इस में बहुत कुछ सत्य है। व्यवहारिक ज्ञान की दरिद्रता ही से हामारे देश का अधःपतन हुआ है और यही हमारी अवनति का कारण है

यदि केवल शास्त्रार्थ करने की बात है तो राम भी औरों की तरह इन विदेशी इतिहास लिखने वालों के धुर्रे बहुत सुगमता से उड़ा सकता है, परन्तु प्यारो! उन्हों ने तो सत्य और वास्तविक बात लिख रक्खी है जो स्वयंसिद्ध है। मैं उसमें 'नहीं' कैसे कर सकता हूं। सारी सामाजिक बुराइयों की जड़ व्यवहारिक ज्ञान की न्यूनता ही है। शारीरिक श्रम का तिरस्कार, जाति और पंथ के प्रकृति विरुद्ध भेद और मत भेद, देशाटन करने की मनाही, बाल विवाह और स्त्रियों पर लादा हुआ मानसिक और शारीरिक अन्धकार इत्यादि सब दोष इसी व्यवहारिक ज्ञान की न्यूनता ही में शामिल हैं। इस सामाजिक अवनति को दूर करना बड़ा दुष्कर कार्य्य है। बर्क साहब ने एक बहुत सुन्दर वाक्य कहा है कि यदि हम सुधार से प्रसन्न होना चाहते हैं तो उसे दूर ही रखना चाहिये। प्रथा के पंथ से छुटकारा पाना बड़ा भारी काम है। क्योंकि कर्तव्यवान पुरुष समाज और समाज के नेताओं के दोष सब को बतलाता है। और यदि आवश्यकता पड़े तो उनकी निन्दा भी करता है, इस कारण उससे लोग द्वेष भाव करने लगते हैं। वह कहता कुछ है परन्तु उस के वाक्यों से अर्थ और ही कुछ निकाल लेते हैं और अनैक्यता से बचने के लिये जैसी स्थिति है वैसी ही बनी रहने देना हमारे लिये

उचित है। और क्या 'यद्भावि तद्भवतु' कह कर स्वार्थ ही से काम रखना हमारे योग्य है? क्या यह सम्भव है कि आप अपनी मोक्ष प्राप्ति की चिन्ता में लगे रहें और समाज को छोड़ दें चाहे उसका कुछ भी हो? डूबने वाला समाज आपको अकेला कदापि नहीं छोड़ेगा। यदि समाज डूबता है तो तुम्हें भी उसके साथ २ डूबना पड़ेगा। यदि समाज उत्तम उन्नति करता है तो तुम्हारी भी उन्नति अवश्य होगी। यह बात सर्वथा असम्भव है कि दूषित समाज में एक भी व्यक्ति दोष रहित और पूर्ण हो सके। समाज से अलग होकर किसी का तरक्की करना ऐसा है जैसे हाथ का शरीर से अलग हो कर पूर्ण शक्ति प्राप्ति करने की कोशिश करना।

यह वेदान्त विरुद्ध विचार हिन्दुस्तान में बहुत दिनों से चला है। इसी कारण समाज का अङ्ग भङ्ग भी हो गया है और शोचनीय अवस्था उत्पन्न हो गई है। हे भारत के होनहार नव युवको! हिन्दुस्तान का भविष्य काल तुम्हारा ही है और तुम्ही उसके लिये उत्तरदाता हो। बहुमत के जादू में कायर लोग फँस जाते हैं। सत्य से भरा हुआ चैतन्य मनुष्य तो लोगों के विचार और अन्तःकरण पर राज्य करता है, नाम मात्र का बाहरी राजा कोई भी हो। बी ए. किंवा एम. ए. की पदवी तुम्हें विश्वविद्यालय से मिलती है परन्तु क्रूर और शूर की पदवी तुम्हें स्वयं ही चुन लेनी होगी। बताओ तुम्हें कौन सी पदवी पसन्द है? नीचे गुलामी की अथवा जीवन के युवराज को। बलवान और शुद्ध चरित्र ही इतिहास को उन्नति का मुख्य साधना है। न्युटन ने गति के दूसरे सिद्धान्त से यह प्रमाण निकाला है कि शक्ति का प्रभाव दूसरे पदार्थों पर यह होता है कि उनकी गति में कुछ विकार उत्पन्न होजाता है। सैकड़ों वर्षों से हमारे इस देश में द्वेषभाव

और शून्यभाव से बड़ा अनिष्ट होता आया है और इसका मुख्य कारण लकीर का फ़कीर होना और झूठी बातों पर विश्वास करनाही रहा है। हे विचारशील और सुचरित्रवान युवको! यह तुम्हारा काम है कि चैतन्यमय शक्ति बनकर हानिकारक चाल को दूर कर दो। इस पुरानी तामसिक गति को हटा कर शक्ति का मार्ग उस तरफ़ करदो जहां उसकी आवश्यकता है। जहां कहीं ज़ोर बढ़ाने योग्य हो उसे बढ़ाओ। उद्योग किये जाओ, कार्य किये जाओ। भूतकाल को वर्तमान के अनुसार बनाओ, निर्भयता से अपने पवित्र और बलिष्ठ वर्तमान को भविष्य काल की दौड़ में शामिल कर दो जो कुछ हमने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया है हम उसे छोड़ नहीं सकते, क्यों कि जो समाज अपने पूर्वजों से पाई हुई वस्तु का त्याग कर देता है तो कोई बाहरी शक्ति उस समाज का नाश कर देती है। परन्तु साथ ही साथ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह जो कुछ हमने अपने पूर्वजों से पाया है उसका बहुत आडम्बर भी न करें। क्योंकि जो समाज ऐसा करता है उसका नाश भीतर ही से हो जाता है। क्या तुम्हारे शुद्ध आचरण से समाज में कलह और द्वेष उत्पन्न होना सम्भव है! क्या तुम्हारा ऐसा विचार है? यदि तुम अकेले ही हो तो भी डटे हुए खड़े रहो, पीछे कदापि मत हटो, इसी का नाम पुरुषार्थ है। प्रवाह तुम्हारे अनुकूल है। उनको अपना भूत काल ले कर बैठे रहने दो। क्या झूठ से तुम राष्ट्र का उद्धार कर सकते हो? क्या लोगों को अन्धकार में रख कर तुम उनमें एकता पैदा कर सकते हो? क्या भूल और झूठे विश्वास से राष्ट्रीय एकता उत्पन्न हो सकी है। मान लो कि सब मल्लाह एक ही दिशा को जहाज़ खे रहे हैं, परन्तु यदि वह दिशा उलटी, विकाश-विरुद्ध, व सत्य-विमुख हो तो क्या उसी दिशा

में जाना ठीक है, ऐसी नौका तो अवश्य ही किसी चट्टान से टक्कर खायगी, और चूर २ हो जायगी। यह काम जितनी जल्दी हो उतना ही अच्छा है। केवल स्वर्ग में एकता सम्भव है। सत्यता और पवित्रता से जो एकता होती है वही चल सकती है। हे राष्ट्र की एकता की कांक्षा रखने वालो! तुम्हारा प्रथम कर्तव्य यह है कि राष्ट्र में जो असंख्य अमानुषिक प्रथायें हैं उन्हें दूर करो। यदि मनुष्य जाति के लिये, सत्य के लिये, और उन्नति के लिये लोगों को कष्ट उठाना पड़ता है या कार्य्य कर्ताओं को दंड मिलता है तो यह सिद्धांत निकलता है कि देश में आत्मिक जीवन उपस्थित है, और उसकी स्वास्थ रक्षा के लिये ठीक तौर से स्वास आते और जाते हैं।

आदर्श चरित्र में तो दुःख का नाम मात्र भी नहीं होता। वहां तो प्रेम और ज्ञान फैलाने वाली शान्ति ही शान्ति होती है। भला जिस समाज में ज्ञान का प्रकाश त्रास दायक प्रतीत होता है उस में दुःखरहित शान्ति और उदयोन्मुख प्रकाश साथ २ कैसे रह सकते हैं। यदि तुम्हारी प्रकृति ही ऐसी होगई है कि तुम आदर्श जीवन नहीं व्यतीत कर सकते तो बिलकुल सरल और सत्य चरित्र बनाओ, क्योंकि इस की आज कल बहुत ही आवश्यकता है। छोटे विचार वाले बड़े आदमियों से किसी देश को बल प्राप्त नहीं होता बल्कि बड़े विचार वाले छोटे लोगों से देश का कल्याण होता है। शान्ति? जानवरों कीसी काहली भी शान्ति दायिनी मालूम होती है। स्मशान भूमि भी शान्तिमय देख पड़ती है। परन्तु हमको जीवित शान्ति चाहिये, मरी हुई नहीं। जिस समय लोगों में अन्धकार फैला हो और लोग अंधेरे में ठोकरें खा रहे हों उस समय अपने प्रकाश को एक डलिया के नीचे ढक

करना महा पाप है। यदि तुम्हारे पास प्रकाश न होता तो तुम्हें इतना पाप न होता। वह मनुष्य जो अपने वाक्यों से दूसरों की सहायता कर सकता है परन्तु ऐसे समय पर भी चुप रहता है, वह उस सिपाही के सदृश पापी है जो अपनी जगह छोड़ देता है।

(ग) अब हम मनुष्य संख्या के प्रश्न को लेते हैं।

जो कुछ माल्थस और अन्य सम्पत्ति शास्त्र वेत्ताओं ने इस विषय में कहा है उस के वर्णन करने की यहां कोई आवश्यकता नहीं है। माल्थस तो केवल प्राणी शास्त्र (Biology) के सिद्धान्तों का पुनरुद्धार करता है। आओ ज़रा देखें तो कि प्रकृति शास्त्र वेत्ताओं ने इस विषय में क्या कहा है। हक्सले ने एक देश या समाज को आरण्य के एक उपवन से उपमा दी है। सामाजिक विकाश का क्रम (अथवा जिसे वह नैतिक क्रम कहता है) बाग़ के क्रम से बहुत मिलता है। परन्तु ये दोनों क्रम स्वेच्छाचारी स्टृष्टि क्रम के विरुद्ध हैं। इस स्टृष्टि क्रम में घोर और तीव्र जीवन संग्राम होता है परन्तु बाग़ के क्रम (horticultural process) और नैतिक क्रम में यह संग्राम नहीं होता, इस संग्राम में मूल कारण ही उड़ जाता है। इन सब क्रमों की अभिन्नता सिद्ध करने की हेनरी-ड्रमण्ड ने बहुत धर पकड़ की परन्तु तौभी वह डारविन और हक्सले के सिद्धान्तों से एक अंगुल भी आगे न बढ़ सका। वह इस बात से भी इनकार नहीं करता, क्योंकि कोई समझदार आदमी इससे इनकार कर ही नहीं सकता कि यदि माली बगीचे को निरादर कर उसकी बाढ़ को न रोके तो बहुत शीघ्र उस बाग़ में स्वेच्छाचारी स्टृष्टि क्रम आरम्भ हो जायगा और घनघोर संग्राम और कलह उत्पन्न हो जायगी, और उस बग़ीचे से शान्ति और आनन्द का राज्य

उठ जायगा। इसी तरह से जब किसी समाज में लोक संख्या की बाढ़ हद तक पहुंच गई और उस जन संख्या की अधिकता को ठिकाने का कोई उपाय नहीं किया गया तो अवश्य ही उस समाज में घोर संग्राम आरम्भ हो जायगा और शान्ति को नष्ट कर देगा; नैतिक क्रम को डुबा देगा; नैतिक तत्वों का नाश कर डालेगा और ईश्वरीय आज्ञाओं का तिरस्कार होगा। निस्संशय ऐसे ही समय से राष्ट्रों की अवनति और अधोगति आरम्भ होती है, रोम, ग्रीस और अन्य देशों की अवनति और नाश का मूल कारण यही लोक संख्या का प्रश्न है। हिन्दुस्तान पर इस लोक संख्या की बाढ़ का प्रसंग पहिले ही आ चुका था। परन्तु हम ने अब तक इस मूल विकार को हटाने का कोई उपाय नहीं किया है। तमाम पृथ्वी पर हिन्दुस्तान के सदृश दरिद्र और लोक संख्या पूर्ण कोई भी देश नहीं। हिन्दुस्तान का एक साधारण कुटुम्ब सम्पूर्ण राष्ट्र की स्थिति का सूचक चिन्ह है। प्राप्ति बहुत थोड़ी है, प्रति वर्ष खाने वालों की संख्या बढ़ती जाती हैं, तिसपर निरर्थक और निर्दय प्रथाओं (रस्मों) के अनुचित खर्च का पुछल्ला लगा हुआ है। यदि एक अस्तबल में बहुत से जानवर हैं और घास केवल एक या दो ही के लिये काफ़ी है तो वे पशु अवश्य एक दूसरे से लड़ कर मर जांयगे। लड़ाई की जड़ को तो दूर न करना और लोगों को शान्ति का उपदेश देना तो निरा ढोंग होगा। मेरे देश बान्धव अन्तःकरण से नम्र और शान्ति प्रिय हैं और निश्चय करके वे नम्रता और शान्ति को दिल से चाहते हैं, परन्तु जब ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाती है कि दुर्बलता के कारण वे डाह और खुदग़रज़ी का शिकार बन जाते हैं तो इसमें उन बेचारों का क्या अपराध है। जब तक लोक संख्या

का प्रश्न हल नहीं होता तब तक राष्ट्रीय ऐक्य और परस्पर प्रेमभाव की बात वृथा ही है। हम इस भयंकर प्रश्न को हल करें, नहीं तो हम मर जायेंगे। प्राणी शास्त्र के तत्वों के अनुसार ऐसी सामाजिक अवस्था में जहां अपने साथियों के कारण हमें हर घड़ी दुःख भोगना पड़ता है, सहानुभूति और निस्स्वार्थ की वृद्धि होना असम्भव है। हे भारत वासियो! इतना तो तुम लोक संख्या की अधिकता से ग़रीब हो रहे हो और आशा करते हो कि प्रेम और सहानुभूति की वृद्धि हो तुम्हारी यह आशा वृथा है। पदार्थ विद्या का अभ्यास करने वाले जानते हैं कि हर तरह के पदार्थों की आन्तरिक स्थिरता तब तक रह सकती है जब उसके परमाणु एक दूसरे से इतनी दूरी पर रहें कि छोटे परमाणु को भी अपनी नियमित परिक्रमा करने में बाधान उपस्थित हो। अब यह विचारना चाहिये कि भारत के राष्ट्र की क्या दशा है क्या उसके व्यक्ति बिना एक दूसरे से टकराये हुऐ अपनी नियमित चाल के अनुसार चल सकते हैं? क्या स्वतन्त्रता से वे अपनी नैसर्गिक गति को चला सकते हैं? जब एक का पेट भरने के लिये दस को भूखों मरना पड़ता है, तब तो राष्ट्रीय स्थिरता कायम रखने के लिये हमें शीघ्र ही कोई उपाय करना चाहिये। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो प्रकृति अपने नियमानुसार हमारे साथ व्यवहार करेगी। ऐसी अवस्था के लिये (जैसी की हमारी है) प्रकृति के नियम महर्षि वसिष्ठ ने बताये हैं कि मरी, दुष्काल, नाशकारक युद्ध और भूकम्प हैं। बस अरिष्ट विषयो बहुत बातें हो चुकीं अब यह सोचना चाहिये कि उपाय क्या है? उपाय बहुत से हैं—

(१) यह दुष्ट कल्पना कि हिन्दुस्तान के बाहर पैर रक्खा और स्वर्ग का द्वार बन्द होगया, इस देश से बिलकुल निकल

जानी चाहिये और इस कल्पना के साथ ही साथ जिन लोगों का इस देस में उदर निर्वाह नहीं होता उन्हें भी शीघ्र ही वाहर जाना चाहिये। मित्रो! चलो और देश देशान्तरों में वास करो। कुंए के मेंढ़क वन कर रहने में क्या आनन्द रक्खा है। क्यां तुम्हारे मन में यह विचार नहीं उत्पन्न होता कि तुम्हारे यहां रहने से यह रम्य भारत काल कोठरी हो रहा है, और इसी से तुम्हारा दम घुट रहा है।

(२) किसी समय भारत के आर्य्य उपनिवासियों के लिये यह वड़े सौभाग्य की वात थी कि उनके अधिक संतान हों परन्तु अव वह समय गया और स्थिति वदल गई। लोक संख्या की अधिकता का विचार करते हुये यह ज्ञान होता है कि आजकल वड़े कुटुम्ब का होना एक प्रकार का दुर्भाग्य है। जो विचार शून्य मनुष्य यह कहते हैं कि मरणान्तर स्वर्ग प्राप्ति पुत्र होने पर अवलंबित है उनसे कहो कि ज़रा अपनी आंखें खोल कर देखें कि अपने मरने के पहले ही संसार वृद्धि के कारण तुमने अपने घरको अर्थात् वर्तमान भारत को साक्षात नर्क वना रक्खा है। जो लोग भोग विलास के लिये स्वर्ग चाहते हैं उनको भगवान श्री कृष्णजी ने गीता के दूसरे अध्याय के ४२ से ४५ श्लोकों में खूव लिथाड़ा है। अर्जुन का यह विचार कि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" उस समय भगवान श्री कृष्णजी की आंखों के सामने था। उन श्लोकों को स्वयं वांचकर उनके स्वतंत्रता के विचारों को ग्रहण करना तुम्हारे योग्य है। इस हानिकारक तत्व को जो आज तक हम पर अमंगल करता रहा है झटपट देस से वाहर नीकाल देना चाहिये —"विवाह करो, संतान वढ़ाओ, अज्ञान में जीवन व्यतीत करो और दासत्व में मरजाओ"। कभी तो हम अपनी अधोगति के लिये मुसलमान राजाओं को दोष देते हैं और

कभी अंग्रेज़ी सरकार को, और कभी हम हिन्दुस्तान के धर्मों के माथे सारा दोष मढ़ देते हैं, और कभी हम कहते हैं कि सब अपराध प्रचलित विद्या प्रणाली का है। इस समालोचना में कुछ सत्यता तो अवश्य है परन्तु मुख्य दोष उस अपवित्रता का है जिससे संसार का सम्बन्ध है जिससे सम्पूर्ण भारत-वासी उत्पन्न होते हैं और जो उनकी वर्तमान स्थिति का कारण है अर्थात् विवाह सम्बन्ध। इस अतिशय महत्व पूर्ण और परम पवित्र संस्था को हम बड़ी निर्विवेकता, अविदित रीति और निर्लज्जता से वरत रहे हैं। चाहे जितनी जन्म पत्रिका मिलाओ, चाहे जितने ज्योतिष के हिसाब लगाओ (यात्रा दिखाओ), चाहे जितने मुहूर्त निकालो, चाहे जितने स्तोत्र पढ़ो और चाहे जितने पवित्र संस्कार करो, परन्तु तौभी हिन्दुस्थान में जितने विवाह होते हैं वह सब असामयिक, अनाङ्गलिक और अपवित्र होते हैं। आकाश के कोई ग्रह अपने मङ्गल स्थान पर कदापि नहीं रह सकते जब कि वह देखते हैं कि कोमल और अपरिपक्व बालकों और बालिकाओं का विवाह ग्रहों के अनुकूल स्थान में होने के आधार पर किया जाता है। ऐसा अमानुषिक और पशुओं को भी नीच मालूम देनेवाला प्रसंग देख कर सब ग्रह कांप उठते हैं, और स्वस्थान से च्युत हो जाते हैं। जो वर कन्या अपना निर्वाह स्वयं नहीं कर सकते उनके अपवित्र विवाह को पवित्र करने के बदले वेद मंत्र अपना भी फल खो देते हैं। और इसके पश्चात् भविष्यत में उनका कुछ भी प्रभाव नहीं रहता। देश में अयोग्य, कर्तव्य हीन, निरोपयोगी और परोपजीवी प्राणी उत्पन्न करने के लिये जो निर्धनों के विवाह किये जाते हैं, उनके अधार्मिक संस्कारों की दुर्गन्ध के सामने कोई भी पुष्प अपनी माधुर्य्यता क़ायम नहीं रख सकता। हे तरुण जनों! इसको बिलकुल

बन्द कर दो। हे भारत के भविष्यकाल के लिए उत्तरदाता युवको! इसको बन्द करदो। नैतिक विचार से तथा भारत वर्ष के विचार से या स्वतः अपने लिये और अपने वंशजों के लिये कृपा करके ऐसे विचार शून्य, असामयिक और अंधकार युक्त विवाह जो देश में प्रचलित हैं, बन्द करदो। ऐसा करने से लोग पवित्र बन जांयगे और कुछ अंश में मनुष्य संख्या का प्रश्न भी हल हो जायगा। क्या तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूचना सृष्टि क्रम के विरुद्ध है? इन बातों का पालन तुम्हें करना ही पड़ेगा। नहीं तो जरजरित कर देने वाला दुष्कर और घुला २ कर मारने वाली मौत तुम्हें इस शिक्षा को व्यवहार में लाने के लिये मजबूर कर देंगे। इस में एक तिल भर भी सन्देह नहीं है। शब्दों में सच्ची स्थिति और उसका भावी परिणाम भरा हुआ है। क्या शिशु विवाह और शिशु वैधव्य संसार में सब से ज्यादा सृष्टि विरुद्ध कार्य्य नहीं हैं? पृथ्वी पर किसी भी सुधरे समाज से पूछिये। यदि तुम में कुछ भी मनुष्यता रह गई है तो तुम इन अमानुषिक और सृष्टि विरुद्ध संस्थाओं को दूर किए बिना कैसे स्वस्थ बैठ सकते हो। विधवा अबलायें सहायतार्थ अपने कोमल हाथ तुम्हारे आगे पसारे हैं। प्रत्यक्ष तुम्हारी आंखों के सामने रूढ़ी रूपी चिता पर जीवित सती क्रमशः दग्ध होती हैं। उनके निष्पाप अश्रु पूर्ण नेत्रों से ईश्वरी तेज झलकता है और सहायता की आशा लगाये हुये तुम्हारी ओर टकटकी बांधे देख रही हैं। इस रुदन करने वाली भवानी से कबतक भागोगे। यदि अब भी तुम उसकी बात पर ध्यान न दोगे तो वह रक्त भक्षिणी और उग्र चंडिका का रूप धारण करेगी जिस के सामने पृथ्वी डगमगाने और कांपने लगेगी। लोग शान्तिः शान्तिः चिल्ला रहे हैं परन्तु जब तक स्वयं बुलाई हुई चंडिका

देवी विराजमान हैं तब तक देश में शान्ति कैसे हो सकती है। योरप में लोग जितने कम दर्जे के होते हैं उतनी जल्दी वे विवाह कर लेते हैं, परन्तु जितनी जल्दी विवाह हिन्दुस्तानी करते हैं उतनी जल्दी वहां का नीच मनुष्य भी नहीं करता वहां उच्च श्रेणी के लोग बहुधा तीस वर्ष के पहले विवाह नहीं करते। और इसका मुख्य तात्पर्य्य यह है कि बच्चे थोड़े हों, किन्तु अच्छे हों।

हर्बर्ट स्पेनसर ने अपने प्राणी शास्त्र के तत्वों में लिखा है कि जितनी मानसिक शक्ति बढ़ती जायगी उतनीही प्रजोत्पादक शक्ति न्यून होती जायगी। कब तक हम इतने पतित रहेंगे कि पशुओं की प्रजोत्पादन शक्ति का आदर करते रहेंगे। ब्रह्मचर्य्य के महत्व की सर्वथा स्तुति करने वाले हमारे शास्त्र कहते हैं कि आध्यात्मिक अथवा शारीरिक बल केवल पवित्रता ही में होता है। यदि मानव शक्ति का वह अंश जिसे हम विषय वासना और विषय भोग में खर्च करते हैं, रोक लिया जाय तो बहुत सुगमता से वह ओजस अर्थात् अक्षय अध्यात्म शक्ति का रूप धारण कर सकता है।

अब तुम्हें काम वासना पर अधिकार जमाना चाहिये। वह मूर्ख जो अपनी पशुवृति को नहीं रोक सकता और सृष्टि के बड़े गम्भीर सम्बन्ध अर्थात् भोग सम्बन्ध के साथ खिलवाड़ करता है, यह नहीं जानता कि अक्षरशः वह अपना रक्त—श्वेत रक्त (वीर्य्य) जो उसके प्राणों का आधार है-बहा रहा है। इस दिव्य शक्ति का दुरुपयोग करना ही सब पापों का मूल कारण है। जैसे कहा है कि अनावश्यक स्थान में पड़ी हुई सम्पति का नाम धूल है। काम वासना में पाशविक शब्द की उपाधि लगा देने से उसकी अधमता बहुत कुछ

बढ़ जाती है। पशु अपने अगणित प्रजोत्पादन कार्य्य में महान मूर्ख और नीच होते हैं। उनकी उत्पत्ति की अधिकता ही उनके दारुण संग्राम का मुख्य कारण और इसी से वे बदनाम हैं। परन्तु पशु केवल सुख लालसा से विषय भोग कदापि नहीं करते। मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ गिना जाता है क्योंकि उस की वासनायें उसके विवेक के आधीन होती हैं। फिर जो मनुष्य अगणित प्रजोत्पादन में पशुओं की बराबरी करे और अनावश्यक और निकृष्ट विषयों में पशुओं से भी अधिक लिप्त हो जाय तो उस मनुष्य की अवस्था कैसी महान नीच और पतित होगी, और ऐसी कौन सी आपत्ति है जो उसे न झेलनी पड़ेगी।

पवित्रता! पवित्रता! तलवार की धार पर तुम्हें पवित्रता प्राप्त करनी पड़ेगी। यदि तुम पवित्रता नहीं सम्पादन करोगे तो निर्दयी विकाश चक्र तुम्हें पीस डालेगा। इस समय तुम्हारी आशा केवल पवित्रता ही पर निर्भर है। जिस प्रकार विकाश क्रम ने असभ्य लोगों के समीपीय सम्बन्धों में पवित्र भाव उत्पन्न कर दिया था उसी प्रकार हे भारत वासियों! यदि तुम्हें जीवित रहना है तो तुम्हें अपना आचरण और मन स्वच्छ और पवित्र रखना पड़ेगा। यदि इस में तुमने न्यूनता की तो तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभ है। चाहे यह कार्य्य कठिन हो और चाहे सुगम, तुम्हें इसका साधन करना ही पड़ेगा। अपने देश के लिये, अपने शरीर के लिये, अपने मस्तिष्क के लिये, अपने धर्म्म के लिये, इस लोक के लिये और परलोक के लिये तुम्हें पूर्ण पवित्रता प्राप्त करनी ही पड़ेगी। विना पवित्रता के शूरता नहीं हो सकती, विना पवित्रता के एकता नहीं हो सकती; विना पवित्रता के शान्ति नहीं हो सकती।

अमेरिका और इंगलेन्ड के अशिक्षित लोग भी हमारे विश्वविद्यालयों के साधारण विद्यार्थियों से अधिक चतुर होते हैं। इसका क्या कारण है? दैनिकपत्रों का कम मूल्य होना ही उनकी शिक्षा और ज्ञान का मुख्य साधन है। यहां के विद्यालयों की अपेक्षा इंगलेण्ड, जापान और अमेरिका के पत्र अधिक ज्ञान फैलाते हैं। अपने देश में थोड़ी बहुत शिक्षा के प्रचार करने के लिये हम वर्तमान सरकार तथा दूसरी संस्थाओं को धन्यवाद देते हैं। परन्तु वास्तव में देखने से मालूम होता है कि यह शिक्षा कुछ भी नहीं है। हमारे जन समूह का अज्ञान और हमारी स्त्रियों के भयङ्कर अंधकार का सम्पूर्ण दोष हमारा ही है। जिस शक्ति को तुम आज नीच कर्म और अकर्म करने में वृथा गंवा रहे हो, उनका उपयोग करके स्त्रियों की उन्नति करो, सामान्य लोगों को शिक्षा दो, अपनी उन्नति करो और राष्ट्र का उद्धार करो। इस कार्य्य के पूर्ण करने का अत्यन्त सुलभ और सरल मार्ग यह है कि वर्तमान देशीपत्रों की दशा सुधारी जाय। स्त्रियों और सामान्य लोगों के समझने योग्य भाषा में सच्चे उपकारी पत्र निकाले जांय। और यदि कोई ऐसे पत्र हैं तो उनकी उन्नति की जाय। शायद एक दो बार इस कार्य्य को पूर्ण करने के लिये कुछ प्रयत्न हुआ था, परन्तु उसमें कुछ सफलता नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि पढ़े लिखे विद्यार्थियों को देशीभाषा लिखने में संकोच होता है। प्रियवर्गो! अपनी मातृ भाषा का मान और आदर करना सीखो। भारतीय युवक मंडल (Indian young men's Association) का सरल और सीधी हिन्दी में एक पत्र निकालना चाहिये! चाहे पंजाबीही में पत्र हो परन्तु अक्षर देवनागरी होना चाहिये। और इस बात का ध्यान अवश्य रहना चाहिये कि जहां तक

हो सके संस्कृत और फ़ारसी शब्द न आने पावे। ऐसी भाषा कदापि न लिखना चाहिये जिसे तुम व्यवहार में न लाते हो। जैसा विचार में आवे वैसा ही स्वाभाविक रीति से लिखो। किसी का अनुकरण मत करो। इस पत्र में कालेज के विद्यार्थियों को छोटे २ लेख लिखना चाहिये। उच्च विचार और चित्ताकर्षक कल्पनायें तुम्हें अपने विद्याध्ययन में मिलें, उन्हें कभी २ अपनी मातृभाषा में लिखने का प्रयत्न करते रहो। इससे पाठकों से अधिक तुम्हारा उपकार होगा, यद्यपि बहुधा लोग यही समझते हैं कि केवल पाठकों ही का उपकार होता है। इस कार्य्य के विवरण की बातें सोच कर कच्चे मत पड़ो। पहले अंक को हिन्दी वर्णमाला से आरम्भ करो और उसमें थोड़े बहुत सीधे सादे शब्द भी रखदो। इस शुभ कार्य्य का भार विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को अपने ऊपर लेना चाहिये। क्योंकि देश में ज्ञान और चमत्कार फैलाने का काम उन्हीं को दिया गया है। उन्हें उचित है कि अपनी माता बहिन, पुत्री, स्त्री, और अन्य नातेदार स्त्रियों को लिखना और पढ़ना सिखावें। सार्वजनिक पाठशालाओं का रास्ता न देखो। यह पवित्र काम तुम्हारे सिर आन पड़ा है। यदि भारत को जीवित रखना मंज़ूर है तो स्त्रीशिक्षा का प्रचार खूब जोर शोर से होना चाहिये। फिर इस कार्य्य को तुम्ही क्यों न आरम्भ कर दो। यह तुम्हारा कर्तव्य है कि कोई स्त्री अथवा निर्धन मनुष्य देश में निरक्षर न रहने पावे। देश के मुख पर जो यह अज्ञान का कलंक लगा है इसे धो डालो। क्या तुम्हें अपने पड़ोस की मेहतरानियों को शिक्षा देने में शरम मालूम होती है? यदि ऐसा हो है तो तुम्हारी रीति-भांति और नैतिक आचरण को धिक्कार है। तुम्हारा परम कर्तव्य है कि विचारी धनहीन और अशिक्षित स्त्रियों से मातृवत् प्रेम के

साथ मिलो और उन्हें शिक्षारूपी प्रकाश प्रदान करो। यह कार्य्य कितना सात्विक और पवित्र है। भारतीय युवक मंडल के मुखपत्र में प्रारम्भिक पदार्थ विज्ञान, इन्द्रियविज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, सम्पत्तिशास्त्र और मानसशास्त्र इत्यादि के मूल तत्वों पर छोटे २ लेख क्रमशः निकलना चाहिये। परन्तु भाषा अत्यन्त सुगम और मनोरंजक होना चाहिये। और फिर भाषा धीरे २ शुद्ध और उच्च पदवी की कर दी जावे। राम की सम्मति यह है कि पत्र देवनागरी अक्षरों में निकाला जावे, जिससे हिन्दी शीघ्र ही राष्ट्र भाषा हो जावे। स्त्रियों और ग़रीबों को शिक्षा देना तुम्हारा परम कर्तव्य है। इस कर्तव्य कोपूर्ण रीति से पालन करने से तुम्हारी बहुत उन्नति होगी। परन्तु इस बात को मत भूलना कि तुम्हारे आगे एक अधिक महत्व का प्रश्न उपस्थित है अर्थात तुम्हारा कर्तव्य यह है कि उन्नति प्राप्त देशों में जाओ और वहां कृषि विद्या तथा अनेकानेक उद्योग धन्धे सीख कर उनको सम्पूर्ण भारत में अच्छी तरह फैलाओ।

धर्म्म

क्या इस लेख ने तुमको अधीर बना दिया है? क्या तुम सुनते २ थक गये हो? चाहे थक गये हो और चाहे न थके हो परन्तु अभी डटे रहो। राम तुम्हें कदापि नहीं जाने देगा। जब तक तुमसे वह बात न कहले जिसके फैलाने के लिये वह पैदा हुआ है वह तुम्हें छोड़ ही नहीं सकता। ऐ गृहस्थो! शायद तुम्हें कोई आवश्यकीय कार्य्य करना हो परन्तु प्राचीन महात्मा कदापि नहीं जाने देगा। क्योंकि राम के सन्देश से अधिक आवश्यकीय कोई कार्य्य नहीं हो सकता।

गृह धर्म्म, सामाजिक धर्म्म राष्ट्रीय धर्म्म अथवा तुम्हारा सम्पूर्ण कर्म्मकांड या कोई सा शुभ कर्म्म अन्धकार में नहीं

हो सकता। हां, अशुभ कार्य्य तो अवश्य अंधेरे में किये जाते हैं। अपने हृदय में विना श्रद्धारूपी अग्नि और ज्ञान की दिव्य ज्योति प्रज्वलित रक्खे हुए तुम कुछ भी नहीं कर सकते और एक पग भी आगे नही बढ़ सकते। यह सब योजनायें और सूचनायें जो रोज़ तुम्हारे कानों में भरी जाती हैं वे सब तुम्हारे जीव के केवल बाहरी अंग हैं शरीर विना चैतन्य के रह नहीं सकता। जितने आन्दोलनों को सफलता प्राप्त हुई है उनकी चैतन्यता केवल जीवित श्रद्धा और दिव्य ज्ञान ही पर निर्भर रही है। जड़वाद, संशयवाद, निरीश्वरवाद, नास्तिक वाद और अज्ञेयवाद इत्यादि मतों के धुरन्धरों को जो यश और सफलता प्राप्त होती है उसका मूल कारण धार्मिक वृत्ति ही मालूम होती है, किन्तु उन धुरन्धरों को इसका वास्तविक ज्ञान नहीं होता कुछबातों में यह लोग नाम मात्र के धर्म्माभिमानी लोगों की अपेक्षा अपने आचरण में धर्म्म का व्यवहार अधिक करते हैं। उदाहरण के लिये एक रबड़ का कारखाना ले लो। इस में हज़ारों बेकार लोगों को रोज़गार मिलता है, राष्ट्रीय व्यापार आरम्भ होता है, देश के धन की वृद्धि होती है, ग़रीब मजदूरों को उत्तेजना मिलती है, और अग्निबोट वालों को, रेलवे के कर्म्मचारियों को, डाकखाने वलों को, भरपूर काम और वेतन मिलता है। परन्तु यह सब कार्य्य कैसे होता यदि एक रसायनिक समीकरण (Chemical equation) अथवा अदृश्य अन्तरिक विकृति (Invisible inner reaction) से इसको सहायता न मिलती। इसी प्रकार तुम्हारे सब व्यक्ति विषयक, प्रापंचिक, सामाजिक और राजकीय कार्य्य कभी स्वतंत्रता से फलीफूत नहीं हो सकते यदि तुम अपनी आन्तरिक विकृति, मन की पूर्ण शान्ता, आध्यात्मिक समीकरण या अपनी आत्मा में परमा-

पैमा की कान्ति की शोभा और तेज प्राप्त न करोगे। कार्लाइल का कथन है कि श्रद्धा बलवती और चैतन्य दायिनी है। जितनी ही अधिक किसी राष्ट्र की श्रद्धा होती है उतनाही उसका इतिहास सफल और उन्नतिकारक होताहै। ज़रा उन अरब लोगों की तरफ़ देखो, उस अकेले मोहम्मद की तरफ़ देखो और एक शताब्दी की तरफ़ देखो, तो क्या यह नहीं प्रतीत होता कि भूमंडल के उस बालुकामय प्रदेश में एक चिनगारी सी पड़ गई परन्तु क्या ही चमत्कार है कि वह रेणुका ज्वालाग्राही बारूद बन जाती है और दिल्ली से ग्रनेडा तक उसकी गगन चुम्बित ज्वाला भड़कने लगती है। अल्ला हो अकबर ! ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

जो कुछ वास्तविक उच्च है, वह हमारे अनिर्वचनीय अन्तः करण से उत्पन्न होता है जो मनुष्य आत्मस्वरूप में पूर्ण रूप से नहीं रहता अथवा अशांति उसमें रहने पर पूर्ण रूप से रहने के लिये प्रयत्न नहीं करता, ऐसा मनुष्य चाहे जहां पर हो और चाहे जैसा ऐश्वर्य्य क्यों न रखता हो, किन्तु वह शून्य अथवा मृतक ही है।

हर्बर्टस्पेनसर अपने अन्तिम ग्रन्थ में जिसकी उपमा राजहंस के आखिरी गीत से दी जा सकती है, हक्सले के एक प्रयोग पर, जो उसने एक बड़ी सूंस पर किया था, उल्लेख करते हुये कहता है कि मनोवृत्ति हमारी विचार संज्ञा का बाहरी आकार है। मन की चर्चा करते समय हम बहुधा मन के उस भाग को भूल जाते हैं जो उसका मुख्य अंग है अर्थात् मनोवृत्ति। मनोवृत्ति स्वामिनी है और बुद्धि दासी। मनोवृत्ति, जिसे व्यवहारिक भाषा में अन्तःकरण कहते हैं, श्रद्धा और धर्म्म का निवास स्थान है। मनोवृत्ति ही से सम्पूर्ण कामों

की प्रवृत्ति होती है और उसी से सर्व कार्य्य करने की शक्ति प्राप्ति होती है। स्पेन्सर फिर कहता है कि जब तक स्वामी हृदय का सुधार नहीं होता तब तक सेवक बुद्धि के सुधारने से कुछ फल नहीं हो सकता। इस धुरन्धर अज्ञेयवादी का यह सिद्धान्त वर्तमान समय के सर्वोपरि मानस शास्त्री जेम्स के सिद्धान्त से कितना मिलता है। अध्यापक जेम्स का कथन है कि धार्मिक अनुभव प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य ज्ञान के बराबर ही विश्वासनीय होते हैं। और बहुधा तर्क शास्त्र से संस्थापित किये हुये सिद्धान्तों से वह अधिक विश्वासनीय होते हैं। अपनी प्रकृति की शाब्दिक स्थिति से गूढ़तर स्थिति में वास करना चाहिये। अपनी सत्ता की गहराई का पता लगाना चाहिये। अपनी वास्तविक स्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना किम्बहुना स्वयं उसको प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि जो तत्व तुम में है वही विश्वम्भर में है। 'तत्वमसि की जीवित मूर्ति बन जाना चाहिये।

येही तो है प्राण इसै ही जान अमरता।
यही जियेगा और चलैगा होकर सत्ता॥
दृष्टिपात से भेदक है येही खम्भों का।
है हमको अधिकार कहें हम जगमें ऐसा॥
हटता है संसार जगह देने को मुझ को।
मैं अति तीव्र प्रकाश आगया दूर तिमिरहो॥
चेतो गिरि समुदाय राह दो छोड़ हमारी।
होंगी चकनाचूर पसलियाँ आज तुम्हारी॥
नृपगण शासकवर्ग खिलौने सुन्दरसारे।
है पावक का प्रलय बचो, बालकों हमारे॥
देव और प्रारब्ध जुते हैं मेरे रथ में।
तोपों से दो घोर घोषणा त्रिभुवन पथ में॥

जागो जागो ऊठो भ्रान्ति को छोड़ो छोड़ो ।
हो जाओ स्वच्छन्द जाल बन्धन को तोड़ो ॥

जिस ज्ञान का एक स्वरूप अपार शक्ति है उसी का दूसरा स्वरूप अनन्त शान्ति है

आती शान्ति अखंड मेंह के बुन्दों के सम ।
झड़ी सुरीली संघ सुधारस बरसै अनुपम ॥
रिम झिम रिम झिम रिम झिम ।
मेरी द्युति के मेघ चले हैं सुन्दर कैसे !
हैं उन से ये बिन्दु लोक सब हीरों ऐसे ॥
रिम झिम रिम झिम रिम झिम ।

मेरी नियम समार चलै है सम से लेखो ।
पत्र पंखुड़ी सदृश देश गिरते हैं देखो ॥
रिम झिम रिम झिम रिम झिम ।

मेरी स्वास सुगंध नीति की सुखद बयारी ।
बहती है क्या मन्द ताप को हरनेहारी ॥
मृदु शाखा सम वस्तु झूल झुक झूमैं कोई ।
ओस बिन्दु सम गिरैं टूट कर भू में कोई ॥
रिम झिम रिम झिम रिम झिम ।

मेरी शोभन प्रभा श्वेत सागर सी सोहै ।
क्षीरपयोनिधि, लहर लहर मानस को मोहै ॥
मन्द मन्द जो मञ्जु तरङ्गे उस में आतीं ।
जल-फुहार-संसार मार बाहर कर जातीं ॥
तारा गण की झड़ी नीर-कण सम मैं आदिम ।
रचता हूँ हर घड़ी, "राम" झिम रिम झिम रिम झिम ॥

यज्ञ का रहस्य

जिस समय ब्रह्मा की पवित्र यज्ञभूमि पुष्कर में निवास था उस समय राम को एक पत्र मिला। उस पत्र के उत्तर में राम से यह पूछा गया कि पुरातन यज्ञादि विधि को पुनः प्रचार करके राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में राम का मत क्या है। उस पत्र के उत्तर में निम्न लिखित उद्गार निकले।

सर्वोत्तम गुण शील जगत में नाम हीन है।
पावन परम प्रसङ्ग लाज का पात्र दीन है॥
होता नहिं विश्वास बुद्धिमत्ता सच्ची का।
है जो उत्तम स्वतः अचम्भा लगे उसीका॥
परिवर्तन ही अधिक ठहरता है अविकारी।
निराकार गुरु वस्तु, रही अश्रुत ध्वनि भारी॥

यदि सूर्य्य बम्बई के आम के वृक्षों से कहने लगे कि मैंने जो अपना प्रकाश और ऊष्णता हिमालय के गंध तरू और देवदार के वृक्षों को प्रदान की है वह मैं तुम्हें नहीं दूंगा और तुम्हें चाहिये कि जो शक्ति और कृपा मैंने उन पहाड़ी वृक्षों पर प्रगट की है उसी से तुम फूलते, फलते और बढ़ते रहो, तब तो वे आम के वृक्ष थोड़े ही काल में अन्तरध्यान हो जायेंगे ; बाटिका के सेवों पर पड़े हुये सूर्य्य के प्रकाश से कमल जीवित नहीं रह सकते। बुद्ध, क्राइस्ट अथवा मुहम्मद के किये साक्षात्कारों से शेक्सपियर, न्युटन स्पेनसर को शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिये हमको अपने प्रश्न स्वयं हल करना चाहिये और पुरातन काल के माननीय ऋषियों और दार्शनिकों की दृष्टि से देखना छोड़ कर स्वयं अपनी आँखों से देखना चाहिये।

प्रत्येक स्मृति ऐसा कहती है कि "पूर्व काल में हमारा मत ऐसा था परन्तु उसके विषय में आज तुम्हारा क्या विचार है" ? प्रत्येक संस्था एक सिक्का है जिस पर हम अपनी ही मुहरछाप लगाते हैं। कुछ काल में उस सिक्के के अंक मिट जाते हैं और वह पहचाना नहीं जाता इस लिये उसे पुनः टकसाल में जाना चाहिये। प्रकृति को इस बात में आनन्द आता है कि वह अपने कंकड़ों को (अर्थात संसार के पदार्थों को) बनाती है, बिगाड़ती है और फिर उनको नया आकार देती है। अपरिवर्तन शील परिवर्तनही जीवन की मुख्य अवश्यकता है (अर्थात् हेर फेर ही जीवन की आवश्यक कुंजी है और इस हेर फेर के नियम में कभी हेर फेर नहीं होता)।

ऐसे मनुष्य की अवस्था से किसी की अवस्था अधिक कारुणिक नहीं है जिसका भविष्य काल उसके पीछे हो और जिसका भूत काल सर्वदा उसके सन्मुख उपस्थित हो। निम्न लिखित विवेचना की प्रत्येक बात गीता, मनुस्मृति और श्रुति के प्रमाणों से पुष्ट की जा सकती है परन्तु ऐसा जान कर नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसा करने से और २ विषय छिड़ जावेंगे और मुख्य बात रह जायेगी अर्थात दूसरे पक्ष के प्रमाण भी दिये जायेंगे और शब्दवाद का विषय उपस्थित हो जायगा। और फिर इस से शिक्षा की हानिकारक पद्धति को उत्तेजना देने का पाप भोगना पड़ेगा अर्थात वस्तु व स्थिति के अभ्यास की अपेक्षा का अध्ययन अधिक महत्व पूर्ण समझा जायगा।

महानुभाव शंकराचार्य्य की बड़ी भारी भूल यह हुई कि उन्होंने अपने प्रकाश (अनुभव) को डलिया के नीचे ढांक कर रख दिया। जब उन्हें स्वानुभव से सत्य प्राप्त हुआ था तो क्या आवश्यकता थी जिसके लिये उन्होंने पुराने प्रमाणों

को तोड़ मड़ोर कर सत्य निकालने का प्रयत्न करने में अपना समय व्यर्थ नष्ट किया। क्या स्वानुभव से भी अधिक विश्वासनीय कोई प्रमाण हो सकता है। उनके पश्चात् जो दूसरे आये (रामानुज माधव इत्यादि) उन्हों ने भी उन्हीं शब्दों से अपने मनमाने अर्थ ज़बरदस्ती निकाले। इस सदिच्छा पूर्ण प्रयत्न से सत्य की गति प्रबल होने के बदले उलटी सिथिल हो गई स्पष्ट शब्दों में इसका अर्थ यह है कि भारत के वर्तमान दुःखों का कारण हमारा सृष्टिकर्मविरुद्ध आचरण ही है अर्थात जीवित आत्म देव को मृत ग्रन्थ रूपी पिशाच का दास बनाये रखने ही से हमारी यह दशा हुई है। श्रुति माता की ऐसी दुर्दशा हुई है कि एक पुत्र उनके केशों को एक तरफ़ खींचता है, दूसरा दूसरी तरफ़ खींचता है और तीसरा उसकी चोटी पकड़ कर तीसराही ओर खींच रहा है। इस प्रकार प्रत्येक जन श्रुति के नाम से अपने मनमाने मत का प्रचार करना चाहता है और इस सब का परिणाम यह होता है कि सत्यता भ्रष्ट होती है। हे प्राचीन भारत के ऋषियो और आचार्य्यों क्या तुम्हारे वंशज इस अधोगति को पहुंच गये हैं कि वे अपनी वर्तमान आवश्यकताओं और आज कल की स्थिति के प्रश्नों को उस भाषा के नियमों से तै करेंगे जो इस समय बोली भी नहीं जाती।

प्रियवरो! नियम और संस्थायें मनुष्य के लिये है। मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिये नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि भाष्य के ज़रिये से भूत और भविष्य काल का मिलान होता है। यह विचार कितना उत्तम है और किस उत्तम रीति से वर्णन किया गया है। परन्तु पुरानी गुदड़ी में हम बहुत थिगड़ो और पेबन्द लगा चुके हैं। सत्य को पेबन्दो की आवश्यकता नहीं है। सम्पूर्ण पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करे परन्तु

सूर्य को पृथिवी की परिक्रमा करने की आवश्यकता नहीं। भूत और भविष्य का मेल जोल बनाये रखने के अभिप्राय से सत्य ज्ञान के आधुनिक आविष्कारों को ईसाइयों की बाइबिल किंवा दूसरे धर्म ग्रन्थों के साथ लटकाने की क्या आवश्यकता है? ईश्वर प्रणीत धर्म ग्रन्थों को स्वतः बोलना चाहिये। इतनी सभ्यता या भलमनसाहत ईश्वर में अवश्य है कि वह अपने वचनों को भ्रम रहित रक्खे और ऐसा न करे कि संसार के लोग सहस्रों वर्ष तक एक भ्रम में गोते खाते रहें और जब तक कोई स्वयं-कल्पशिष्य (Apostle) या टीकाकार आकर उनके अर्थ न बताये तब तक समझें ही नहीं। यह टीकाकार बहुधा ऐसे होते हैं जो पक्षपात रहित न्यायशील होने का दावा करते हैं, परन्तु व्यवहार में दांव पेंच से भरे हुये वकील होते हैं। क्या प्रमाण से सत्य स्थापित हो सकता है? क्या सूर्य दिखाने के लिये दीपक की आवश्यकता है? क्या गणित शास्त्र के एक सरल सिद्धांत की इससे अधिक पुष्टि हो जाती है कि यदि ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, ज़रदुश्त अथवा वेद उसकी साक्षी दें? रसायन शास्त्र के तत्वों का अनुभव हम को प्रत्यक्ष प्रयोगों से होता है। इनका विश्वास मात्र मस्तिष्क में भर देना तो मानो बुद्धि के संहार का पाप अपने माथे पर मढ़ना है। किसी विशेष वृत्तान्त को और त्रिकाल बाधित सत्य को एक ही मत समझो, किसी विशेष वृत्तान्त को हम दूसरे के कहने से अर्थात् प्रमाण से मान सकते हैं परन्तु सत्य स्वतः अनुभव से मालूम होना चाहिये। क्या वेदान्त को वाद विवाद और प्रमाण से सिद्ध करने की आवश्यकता है? वेदान्त के सिद्धान्त को यथार्थरूप से वर्णन करना ही अखंडनीय प्रमाण है। सौंदर्य को आकर्षी बनने के लिये किसी बाहरी

सिफ़ारिश (गुण प्रशंसा) की आवश्यकता नहीं है (नहि कस्तूरिका मोदः शपथेन प्रकाश्यते) ।

प्रिय भाषण करके; अज्ञानरूपी निद्रा को बनाये रखने के लिये लोरियां गाकर और जनसमूह अथवा अज्ञानी मनुष्यों की लल्लो पत्तो करके अगणित अनुयायियों की मंडली जमा करना कोई कठिन काम नहीं है। परन्तु सत्य ही चिरस्थाई है और जितने चराचर पदार्थ हैं वे सब मिथ्या हैं। जो मनुष्य केवल दृश्यों ही को देखकर सत्य का संहार करता है उसे धिक्कार है। सत्य को स्वयम् अपनी इच्छा से विकसित होने दो। सत्यरूपी सूर्य्य को यह भली भांति विदित है कि उसका उदय किस प्रकार होना चाहिये। घोर निद्रा में सोये हुये लोगों को हिलाकर जगाने के लिये सत्य को घनघोर गर्जना करने दो। मैं सत्य हूं, मैं देह (रूप) की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये आत्मघात करने को कभी भी तय्यार नहीं हूं ।

अब यज्ञ के विषय को लेकर हम स्वतन्त्रता से और निष्पक्षपात होकर उसके भिन्न भिन्न पहलुओं (पक्षों) पर विचार करेंगे ।

जैसा कि साधारण रीति से समझा जाता है हवन यज्ञ का मुख्य और आवश्यक अङ्ग है सबसे पहिली दलील जो इसके वर्तमान अनुयायियों की जिव्हा पर रहती है वह यह है कि हवन से वायु शुद्ध होता है और सुगंधि पैदा होती है। एक यह बड़ी खैंचा तानी की कल्पना है। अन्य उत्तेजक पदार्थों की तरह सुगंध भी सूंघने में अच्छी मालूम होती है और क्षण भर के लिये मगन कर देती है परन्तु उसके साथ ही प्रति-क्रिया (Re-action) रूप से शरीर को अधिक मुरदा कर देती हैं। उत्तेजक पदार्थ हमारी भावीशक्ति के भण्डार

में कुछ शक्ति उधार लेते हैं परन्तु यह क़र्ज़ सर्वदा ब्याज पर ब्याज के हिसाब में उधार मिलता है और असली ऋण चुकाने की कभी नौबत ही नहीं आती।

सच्ची बात तो यह है कि हवन से सुगंध तो बहुत थोड़ी निकलती है। लेकिन उसका विशेष भाग कार्बन डाइआक्साइड (Carbon dioxide) होता है और यह पदार्थ बड़ा हानिकारक होता है।

एक समय ऐसा था जब कि भारतवर्ष में मनुष्य बसती की अपेक्षा जंगल अधिक थे। उस समय घी और अन्य पिष्टमय पदार्थों (Hydrocarbonates) के जलाने से वनस्पतियों के उगने में शायद कुछ थोड़ी बहुत सहायता होती हो। क्योंकि इस में कार्बन डाइआक्साइड पैदा होता है। परन्तु आजकल स्थिति बिल्कुल उलटी है। एक तो अब वे जंगल नहीं रहे और दूसरे जन संख्या की भी निःसीम वृद्धि हो गई है। इस का परिणाम यह हुआ है कि हवा में कार्बन डाइआक्साइड अधिक बढ़ गया है इसीसे लोग बड़े आलसी बन गये हैं। आज कल भारतवर्ष को प्राणवायु (Oxygen) और तीव्र प्राण वायु (Ozone) की विशेष आवश्यकता है न कि कार्बन डाइआक्साइड की।

यह बात याद रखना चाहिये कि हवन करने का और लोगों को भोजन कराने का वायु पर रसायनिक परिणाम एक ही होता है। तब अमूल्य धन को कृत्रिम अग्नि के मुंह में झोंकने के बदले सूखी रोटी के टुकड़े उस जठराग्नि में क्यों नहीं डालते जो लाखों भूखे परन्तु साक्षात नारायण स्वरूप ग़रीब लोगों के अस्थि व मांस को खाये डालती है। इस प्रकार के हवन की आज कल भारतवर्ष में विशेष आवश्यकता है।

फिर ज़रा यह देखिये कि यदि आप ने एक दिन हज़ार दो हज़ार आदमियों को भोजन करा भी दिया तो इससे लाभ क्या होगा। बिना विचार किये हुये दान करने से तो केवल भले मानस भिखारियों की ही संख्या बढ़ेगी। पात्र कुपात्र का विचार किये वग़ैर दान करना ही भारतवर्ष की सम्पूर्ण दरिद्रता का मूल कारण है। एक फ्रेञ्च ग्रन्थकार का कथन है कि लोगों के दुःख निवारण करने के लिये जो दान किया जाता है वही दान इस दुःख के आधे से ज्यदा भाग का उत्पन्न करने वाला होता है और जिस नवीन दुःख को उसने स्वयं पैदा किया है उसके अर्ध भाग को भी वह निवारण नहीं कर सकता। दान का निर्णय परिणाम से करना चाहिये न कि अन्तःकरण के हेतु से। वह दुर्बल मन वाला यात्री जो किसी मुड़चिरे व आलसी भिखारी को एक आध पैसा दे देता है चाहे वह अपनी मन समझौती कर ले कि उसने परलोक में अपने जीव की रक्षा का इन्तिज़ाम कर लया है (यह बात ठीक हो या न हो) परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इस लोक में उसने अपने राष्ट्र के नाश करने का उपाय अवश्य किया है।

हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि हमें ठीक तरह का यज्ञ करना चाहिये—अर्थात् दीन और अनाथ लोगों की सेवा और रक्षा करना चाहिये। और इस कार्य्य को इस रीति से करना चाहिये कि हमारे मूल उद्देश का नाश न हो। यदि आप किस मनुष्य को कोई सब से बड़ा दान दे सकते हैं तो वह केवल विद्या-दान है आज आप किसी मनुष्य को भोजन करा दीजिये कल फिर उसे भूख लगेगी। परन्तु यदि इसके बदले आपने उसे कोई धन्धा सिखा दिया तो आप ने उसको जन्म भर रोटी कपड़ा खाने के योग्य बना दिया। जो विद्या उसे

सिखाई जाय वह ऐसीहो कि जिससे उस मनुष्य का जीवन वास्तविक रूप से सार्थक हो जाये। वर्तमान समय में (भिखारी रहने की अपेक्षा) जूते बनाने का काम अथवा कोई और काम सीख लेना अतिउत्तम है।

जो लोग तुम से धन, ज्ञान, शक्ति अथवा पद में छोटे हों उनके साथ तुम्हें वैसी ही सहानुभूति प्रगट करना चाहिये और उन पर वैसी ही सहायता करनी चाहिये जैसी कि लोग अपने पुत्र से करते हैं। और प्रतिफल की आशा न करके यह समझना चाहिये कि यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हमको लोगों की सेवा करने से मातृ पद प्राप्त करने का महान् सुख अनुभव करने का अधिकार है। और लोगों को उत्तेजन, ज्ञान और प्रेम इत्यादि वास्तविक भोजन देने का सुअवसर प्राप्त है। यही सब से बड़ा निष्काम यज्ञ है।

किसी अन्य अवसर पर भारतवर्ष के कर्मकांड का इतिहास सविस्तार लिखेंगे। भारतवर्ष के प्राचीन समय में जबकि समाज आजकल की तरह बनावटी नहीं हो गया था और खान पान, वस्त्र, वरद्धार इत्यादि की रीति भांति की ओर लोगों का इतना ध्यान न था और वर्तमान कश्मीर के अनुसार फलफूल के वृक्ष सर्वत्र अधिकता से उपस्थित थे, और अमेरिका के वर्तमान मूल निवासियों के अनुसार भारतवर्ष के लोगों को कपड़े की विशेष आवश्यकता न थी, जबकि वृक्षों की छांह और पहाड़ों की गुफायें लोगों को घर का काम देती थी। उस समय लोगों की संचित मानसिक और शारीरिक शक्ति के लिये कोई दूसरा मार्ग न होने के कारण वह शक्ति देवताओं से व्यवहार करने में अर्थात् सब प्रकार के यज्ञ करने में लगाई जाने लगी। पहले यह सब यज्ञ देवताओं से ठीक २ और सच्चा व्यवहार मात्र थे। उन में याञ्चन, दास वृत्ति और

'भिक्षां देहि' का नाम तक न था। दैवी शक्तियों से बराबरी के नाते के साथ व्यवहार रूप से वे कीजाती थीं। यदि उन यज्ञों को पंच महाभूतों के साथ की हुई दुकानदारी कहें तो अयुक्त नहोगा। परन्तु उनमें आजकल का सा मारवाड़ी ढंग बिलकुल न था यद्यपि उन में पारस्परिक लेन देन और सच्ची बनिक वृति अवश्य थी।

ये सम्पूर्ण यज्ञ "अगर" पर अवलंबित थे। अगर तुम्हें जल चाहिये तो अमुक यज्ञ करो, अगर तुम्हें सन्तान चाहिये तो अमुक यज्ञ करो, अगर तुम्हें जय लाभ करना है तो दूसरे प्रकार का यज्ञ करो, और अगर तुम्हें धन चहिये तो तीसरी तरह का यज्ञ करो इत्यादि इत्यादि। इस रीति से ये सब यज्ञ स्वयं हमारी इच्छा पर अवलंबित होने से "अगर" पर निर्भर थे और इसलिये ये सब पहले आवश्यक न थे वरन हमारी इच्छा के अनुसार थे। परन्तु धीरे २ उनकी प्रथा चल गई और उन्हों ने रूढ़ी का रूप धारण कर लिया इस से यह सिद्ध होता हैं कि वे हमारे स्वयं ग्रहण किये हुये कर्तव्य हैं।

भारत वर्ष के इतिहास में आगे चलकर हम यह देखते हैं कि यज्ञों का स्थान पौराणिक कर्मकांड ने ले लिया। महा भारत के आपस के युद्ध ने देश में बड़ा भारी हेर फेर पैदा कर दिया था। धार्मिक और राजकीय क्रांतियो ने राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था को उलट पलट कर दिया था। प्राचीन देवताओंके सम्बन्ध की भावना बिलकुल बदल गई थी। अब लोगों की व्यवहारिक आवश्यकतायें अधिक बढ़ गई थी और उन के पास इतना समय न था कि एक यज्ञ करने म महीनों या वर्षों बिता देते। प्राचीन यज्ञ-इत्यादि की जगह पौराणिक कर्मकांड के आजाने का यही मुख्य कारण था।

इससे हमें यह प्रमाण मिलता है कि अपने धर्म को तनिक भी हानि पहुंचाये बिना, और समय के आवश्यकतानुसार हम अपने कर्मकांड में आवश्यकीय परिवर्तन कर सकते हैं।

राम यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्मृति, रूढ़ी, आचार, विचार, विधि, संस्कार (अर्थात् सम्पूर्ण कर्मकांड) केवल बदलते ही नहीं रहे हैं परन्तु एक ही देश के भिन्न २ भागों में वे भिन्न २ रहे हैं। किसी समाज का जीवन उसकी लगातार उन्नति, बाढ़ और उचित परिवर्तन ही पर निर्भर करता है। प्रकृति का यह एक अटल सिद्धांत है कि "परिवर्तन करो, नहीं तो मरो" अर्थात् यदि संसार में तुम्हें जीवित रहना है तो कुछ परिवर्तन अवश्य करो।

प्रेसिडेन्ट डाक्टर डेविड स्टार, जो आधुनिक विकाश-वादियों में एक सुप्रसिद्ध मनुष्य है, कहता है कि "सामाजिक विकाश के सम्बन्ध में चर्चा करते समय हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि समाज की पूर्ण अवस्था ही हमें सदैव अपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि जो समाज विशेष उन्नत होता है वह गत्यात्मक (Dynamic) होता है और जो समाज स्थित्यात्मक (Static) होता उसकी बाढ़ रुकी हुई होती है। जितने उन्नत सेंद्रिय-पदार्थ (Organisms) हैं वे बहुत ही अपूर्ण प्रतीत होते हैं।"

स्थिति के साथ पूर्णतया मेल बनाये रखने के लिये हम को हमेशा परिवर्तन करना ही पड़ता है, क्योंकि स्थिति सदैव बदला ही करती है। ऐसा स्थित्यात्मक मनोराज्य जिस में कलह और परिवर्तन का लेश तक न रहे, जिसमें सब लोग सुखी और सुरक्षित रहें, हमारे मनुष्य और जगत के ज्ञान में तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए अपनी परिस्थिति के अनुसार हम को अपना कर्मकांड अवश्य बदलना

चाहिये। वैदिक काल के ऋषियों की आवश्यकताओं से हमारी आवश्यकतायें बिलकुल भिन्न हैं। वे सब "अगर" (ifs) जिन पर सम्पूर्ण कर्मकांड अवलम्बित है, बिलकुल बदल गये हैं। आज कल हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि "यदि तुम्हें गाय भैंसों की ज़रूरत है तो इन्द्र देव को हव्य भेंट करो" अथवा "यदि तुम्हें अधिक सन्तान की आवश्यकता है तो प्रजापति को प्रसन्न करो" या इसी तरह की और बातें। परन्तु आज कल के कर्मकांड के प्रश्न ने यह स्वरूप धारण किया है कि "यदि प्रतिदिन उद्योग और धन्धे बढ़ाने वाली शताब्दी में तुम जीवित रहना चाहते हो और तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि राजकीय क्षय रोग से तुम मर जाओ, तो विद्युतरूपी मातरिश्व पर अपना अधिकार जमालो, भाप रूपी वरुण को अपना दास बनालो और कृषि शास्त्ररूपी कुबेर से ख़ूब स्नेह बढ़ालो। और इन देवताओं से तुम्हारा परिचय करानेवाले पुरोहित, वे शिल्पज्ञ हैं जो इन विद्याओं को पढ़ाते हैं।

अधार्मिक भाषा के प्रयोग करने का अपराध राम पर न लगाइये। इस संसार में हर एक वस्तु परिवर्तनशील है। देश का स्वरूप बिलकुल बदल गया है, राजसत्ता बदल गई है, भाषा बदल गई है, लोगों का रंग (वर्ण) भी बदल गया है, तब फिर वैदिक समय के देवता ही क्यों बैठे हुये स्वर्ग में अपने पालने में झूला करें और समयानुकूल उन्नति क्यों न करें? क्यों न वे नीचे उतर कर हम लोगों के साथ स्वतंत्रता से मिलें ताकि सब लोग उन्हें भली भांति जान जायें।

प्रियवर देश बान्धवो! राम का यह विचार कदापि नहीं है कि सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, (समीर),

विद्युत, मेघ गर्जना इत्यादि में तुम "एकं सत्" ईश्वर को न देखो जैसा कि प्राचीन ऋषियों ने देखा था। राम तुम से ऐसा कभी नहीं कहेगा। ईश्वर को सृष्टि में प्रकृति रूप से अवश्य देखो, परन्तु इसके अतरिक्त ज़रा अपनी दृष्टि और भी फैलाओ अर्थात् प्रयोगशाला और शास्त्राध्ययन भवन में भी ईश्वर को देखो। रासायनिक प्रयोग की मेज़ को यज्ञ की अग्नि से कम पवित्र मत समझो। पुरातन यज्ञ की अग्नि को तुम पुनर्जीवित नहीं कर सकते, परन्तु उस पुरातन काल के प्रेम, आदर और भक्ति का पुनरुद्धार तुम अवश्य कर सकते हो। और ऐसा तुम्हें करना ही पड़ेगा। तुम्हें अपने वर्तमान कर्मों पर, जो समय के आवश्यकतानुसार तुम्हारे कर्तव्य वन गये हैं, इन उच्च भावों का प्रकाश अवश्य डालना चाहिये। अगेसिज़ सवाल करता है कि "क्या सृष्टि का निरीक्षण करना ईश्वर के विचारों को फिर से विचार करना नहीं है?" तुम्हारे सब कामों में पवित्रता और शुचिभूतता वसी रहनी चाहिये। मैं यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित नहीं कर सकता इसलिये मैं लुहार की अग्नि को यज्ञाग्नि के सदृश पवित्र बनाऊंगा। प्रियवर्ग! यह तुम्हारी राम-दृष्टि पर निर्भर है कि तुम किसान की कुदाली को इन्द्र का रथ बना दो। ईश्वरी-दृष्टि का प्राप्त करना ही सच्चे यज्ञ का रहस्य है।

अपनी वर्तमान राष्ट्रीय स्थिति का अनुभव न करने से तुम अपने भावी जीवन और भावी आत्मा को बिलकुल भुलाये देते हो। ऐसे भयंकर नास्तिक मत बनो। इस जीवन काल में तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य अपने भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में है। इसलिये इस तरह से रहो कि तुम्हारा आदर्शमय जीवन अर्थात् तुम्हें जैसा होना चाहिये, वैसा शक्य और सुलभ हो जाये। इस तरह से जीवन व्यतीत करो कि पचास वर्ष के पश्चात्

तुम्हें स्वयं अपने ऊपर लज्जा न उत्पन्न हो। इस विधि से रहा कि तुम्हारी भविष्यत् सन्तान को ऐसा न प्रतीत हो कि हमारा सर्वस्व नाश होगया।

हे धार्मिक हिन्दू लोगो! अपने अन्तःकरण को निर्मल कर डालो, अपनी सदसद्विवेक बुद्धि को जागृत करो। कर्म-कांड रूपी दो मालिकों की सेवा करने की तुम्हें कोई आवश्य-कता नहीं। केवल प्राचीन काल का अथवा अपने पूर्वजों की यादगार मात्र का ख्याल कर के उन जीर्ण और निरुपयोगी वस्त्रों के धारण करने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं है जो तुम्हारे लिये अनावश्यकीय हैं। तुम तो केवल वहां कपड़े पहनो जिन की तुम्हें वास्तविक आवश्यकता है। जो दोष मनुष्यों और राष्ट्रों को दिवालिया बनाता है वह यह है कि लोग अपना मुख्य उद्दीष्ट मार्ग छोड़ कर टेढ़े रास्ते से काम करने को दौड़ते हैं। दृढ़ संकल्प मनुष्य नीच कर्म करने से साफ इन कार कर देता है।

यज्ञ का अर्थ है देवताओं को कुछ भेंट करना। अब प्रश्न यह है कि वेदान्ती और वैदिक भाषा में 'देव' शब्द का क्या अर्थ है? 'देव' का अर्थ है प्रकाश और आयुष्य देनेवाली शक्ति। इस रीति से बहुवचन में 'देवता' शब्द का अर्थ है ईश्वरी शक्ति के अनेक स्वरूप। यह स्वरूप या तो बाह्य शक्ति का रूप धारण करे अथवा भीतरी शक्ति अर्थात् इन्द्रियों का रूप ग्रहण करे। 'आधिदैविक' और 'आध्यात्मिक' शब्दों की तुलना करने से यह प्रतीत होता है कि बहुधा 'देवता' शब्द समष्टी रूप से शक्ति वाचक भी होता है। 'चक्षु' शब्द एक व्यक्त की दृष्टि का बोधक है। परन्तु चक्षु के देवता का अर्थ है सब प्राणियों में देखने की शक्ति और उसका नाम है आदित्य। सूर्य भगवान जो सारे विश्व के नेत्र कहे जाते हैं, वे इस

शक्ति के केवल बाह्य चिन्ह (Symbol) हैं। हस्तेंद्रिय का अर्थ है एक मनुष्य के हाथ की शक्ति, परन्तु हस्तेंद्रिय के देवता से तात्पर्य है सब हाथों को हिलानेवाली शक्ति। समष्टि रूप दृष्टि से इस शक्ति का नाम है 'इन्द्र'। इसी प्रकार जब कभी हम इन्द्रियों के देवता के विषय में बात करते हैं तो यदि उस का कुछ अर्थ हो सकता है तो केवल उपरोक्त अर्थ ही हो सकता है।

अब, यज्ञ में देवताओं के नाम बलिदान करने का यथोक्तिक अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि हम अपनी व्यक्ति विषयक शक्ति को तदानुसार समष्टी रूपी शक्ति के अर्पण कर दें अथवा अपने पड़ोसियों को अपना ही स्वरूप अनुभव करके अपने व्यक्ति संबन्धी अल्प स्वरूप को सर्वव्यापी आत्मा के साथ अभेद कर दें और अपनी इच्छा को ईश्वरीय इच्छा में लीन कर दें। उदाहरणार्थ आदित्य को भेंट करने से यह तात्पर्य है कि हमारा यह दृढ़ संकल्प है कि हम अपने बुरे व्यवहार से किसी भी मनुष्य की दृष्टि को क्लेश न पहुचायें और अपनी ओर देखनेवालों को प्रेम, प्रसन्नता और आशीर्वाद ही भेंट किया करें। समस्त नेत्रों में ईश्वर का रूप देखना ही आदित्य की भेंट चढ़ाना है।

इन्द्र को भेंट चढ़ाने का यह अर्थ है कि देश के सारे हाथों के उपकारार्थ श्रम करना चाहिये। योग्य अन्न को योग्य रीति से ग्रहण करने ही से हर एक का पोषण होता है। हाथ और भुजा के पट्ठे व्यायाम अर्थात् काम करने ही से पुष्ट होते और बढ़ते हैं। इसलिये इन्द्र को हव्य दान करने से यह तात्पर्य है कि जो लाखों गरीब आदमी बेरोज़गार हैं उनके लिये जीविका ढूंढो और उन्हें किसी धन्धे से लगा दो। इन्द्र का जब हव्य मिल जायगा तो देश भर में समृद्धि विराजमान हो.

जायगी। जिस समय सारे हाथ काम में लग जायँगे उस समय विचारी दरिद्रता कहां रह सकती है? इङ्गलैंड में बहुत कम फ़सल होती है अर्थात् बहुत कम किसान हैं, पर तो भी देश मालामाल है। इस का कारण क्या है? इस का कारण यह है कि हस्त देवता इन्द्र को वहां कला कौशल और उद्योग धन्धों के अन्न से इतना तृप्त कर दिया जाता है कि उसे अजीर्ण तक हो जाता है। सब के हित के लिये हम सब का अपने हाथों को मिला कर काम में लगाना ही इन्द्र यज्ञ है। विश्व हित साधन के लिये सब का अपने मस्तिष्क मिलाना ही बृहस्पति यज्ञ है। हृदय के देवता चन्द्रमा का यज्ञ यह है कि हम सब अपने हृदयों को एक कर लें। इसी प्रकार अन्य देवताओं के विषय में भी समझ लीजिये।

सारांश यह है कि यज्ञ करना अपने हाथों को सारे हाथों के, अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्र के, अर्पण कर देना है। अपने नेत्रों को सब नेत्रों के अर्थात् सारे समाज के समर्पण करना है; अपने मन को सब मनों की भेंट करना है, अपने हित को देश हित में लीन करना है और यह समझना है कि और लोग हमारे ही स्वरूप हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि 'तत्वमसि' (वह तू है) को व्यवहार में लाकर अनुभव करना चाहिये। जैसा सूली पर चढ़ने के पश्चात् ईसा के दिव्य स्वरूप का पुनरुत्थान हुआ था उसी प्रकार देहात्मा के वध करने के पश्चात् आपही विश्वात्मा रूप का पुनरुत्थान होता है। इसी को वेदान्त कहते हैं।

प्राण महा प्रभु स्वीकृत कीजे, निज पद अर्पित होने दीजे।
अन्तःकरण नाथ लै लीजे, निज से उसे, प्रेम, भर दीजे।
स्वीकृत कीजे नेत्र हमारे, निज से मतवाले कर प्यारे।
लीजे सत प्रभु हाथ हमारे, सदा करैं श्रम हेतु तुम्हारे।

इस कविता में शब्द 'प्रभु' से आकाश में बैठा हुआ बादलों में जाड़े के मारे सिकुड़ने वाला अदृश्य 'जूजू' से तात्पर्य नहीं है। 'प्रभु' का अर्थ है सर्वस्व अर्थात् सारी मानवजाति।

यह यज्ञ प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये और यह विश्वव्यापी धर्म (Universal Religion.) है। हे भारत-वर्ष! इसको स्वीकार कर, नहीं तो तेरा अन्त है। इसके अतिरिक्त तेरे लिये कोई दूसरा उपाय नहीं।

राम तुम से यह कहता है कि तुम्हारे शास्त्रों में जो लिखा है कि यज्ञ के समय देवता प्रत्यक्ष दिखलाई देते थे, यह बात अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस से तो केवल सामुदायिक ध्यान शक्ति का ही प्रभाव सिद्ध होता है। मानस शास्त्र की आधुनिक खोज से यह सिद्ध हुआ है कि ध्यान शक्ति का प्रभाव किसी अवसर पर उपस्थित हुये एक मन के लोगों की संख्या के वर्ग के अनुसार बढ़ता है। यही सतसंग की महिमा है। यदि अकेला राम किसी कल्पना को मूर्तिमान कर ले तो वे एक ही मन के लाखों लोग जो एक ही मंत्र को जपते हैं और एक ही स्वरूप का ध्यान करते हैं, कैसे उस कल्पना को मूर्तिमान किये बिना रह सकते हैं?

परन्तु इस से क्या सिद्ध होता है? इससे यह सिद्ध होता है कि तुम्हीं अर्थात् तुम्हारा सर्वव्यापी आत्म स्वरूप ही सब देवताओं का पिता और कर्त्ता है। परन्तु ये देव और देवता जो तुम्हारे मन की कल्पना मात्र हैं, तुम्हारे ज़ाहिरी, मिथ्या, संकुचित और एक देशीय 'अहं' पर हुकू-मत करते हैं। अपने भाग्य के कर्त्ता स्वयं तुम्हीं हो। चाहे तुम भय और नर्क में पड़े हुये नीच दास बने रहो या चाहे

तुम अपने जन्म-सिद्ध-अधिकार से वैभव का मुकुट धारण करो। अब इन में जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो और अपने योग्यतानुसार बन जाओ।

किसी विचार या कल्पना को मन में खचित करने के लिये ठीक २ चिन्हों और संकेतों से कैसा अपूर्व फल प्राप्त होता है। यह बात मानस शास्त्र की दृष्टि से राम को भली भांति मालूम है। धन्य है वह मनुष्य जो पूर्ण निश्चय रूप से आत्म समर्पण करने में तनलीन है। मानो वह अपने हाथों का पाणिग्रहण विश्व के हाथों से करा रहा है। यदि, उसका मन अनन्य भक्ति से गद्गद् हो रहा है और इस पवित्र विचार से उसका सारा शरीर रोमांचित हो रहा है, और यदि बाह्यरूप से अग्नि में हव्य चढ़ाने से उसका तात्पर्य्य यह है कि वह अपने अल्पात्मा को विश्वात्मा समर्पण कर रहा है और मंत्रों को पढ़ कर अपने आन्तरिक संकल्प को 'स्वाह' शब्द कह के प्रकाशित करता है. तो बतलाओ वह कौन सी गंभीर मुहर है जो संकेतों द्वारा इस पवित्र काम पर नहीं लगाई जाती? परन्तु हाय रे दुर्दैव! जब केवल मोहर ही मोहर हो और कोई वास्तविक कार्य्य न हो, तो उस ढोंग से क्या आशा की जा सकती है? जहां पर विचार और भावना का बिलकुल अभाव है और अर्थ-शून्य विधि बलात्कार हमारे गले मढ़ी जाती है, वहां यही दशा समझनी चाहिये कि शरीर से प्राण तो निकल गये परन्तु निर्जीव देह अभी पड़ी है। इस निर्जीव शव को शीघ्र जला डालो, अब इस की अधिक सेवा सुश्रुषा न करो, क्योंकि यह बड़ी हानिकारक और घातक है। अब सजीव नूतन विधि को स्वीकार करो।

कुछ लोग यह कहते हैं कि नदी अपने पुराने मार्ग ही से सुगमता के साथ बह सकती है, इसलिये प्राचीन संस्थाओं में नवीन जीवन डालने का प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु राम कहता है कि यह बात प्रकृति के विरुद्ध है। क्या तुम एक भी ऐसी नदी का नाम बता सकते हो जिस ने एक बार अपना पुराना मार्ग छोड़ दिया और फिर उसी रास्ते से बहने लगी हो? अथवा क्या तुम एक भी ऐसा उदाहरण दे सकते हो कि जिस शरीर का प्राण एक बार निकल गया उस में फिर नवीन प्राण ने प्रवेश किया हो? पुरानी बोतलों में नई मदिरा भरने से काम नहीं चलेगा। जिस गन्ने का रस एक बार निकल गया उसकी उसी चिफुरी (शरीर) में फिर रस नहीं आ सकता। उसको जला देना चाहिये। 'पदार्थ और उनकी रचनाओं के स्वरूप और उनके परस्पर के सम्बन्ध सदैव बदलते ही रहते हैं। जिस स्वरूप या सम्बन्ध को उन्हों ने एक बार त्याग दिया उसे वे फिर नहीं ग्रहण करते।" आओ, हम इन यज्ञ की आहुतियों ही को ज्ञानाग्नि में आहुति कर दें। यज्ञ के सच्चे तत्वों को हम देश कालानुसार-रीति से ग्रहण करेंगे। कुछ लोग ऐसे हैं जो इसी को देशभक्ति समझते हैं कि हम सदैव बैठे २ प्राचीन वैभव को स्मरण किया करें।

जो लोग नवीन स्थिति में अपने प्राचीन घर को पीठ पर लादे २ फिरते हैं उन्हें 'घोंघा' की उपाधि देनी ही उचित है। उन्हें दिवालिये महाजन कहना भी अनुचित न होगा; क्योंकि अब वे बैठे २ पुराने और निरुपयोगी बही खातों ही को देखा करते हैं। केवल इसी विचार में सारा समय न गंवाओ कि "भारतवर्ष किसी समय बहुत बढ़ा चढ़ा था"।

अपना सारा अनन्त पुरुषार्थ एकत्रित करो और यह भाव मन में धारण करो कि "भारतवर्ष फिर बढ़ेगा"।

इतिहास और स्वानुभव से यह सिद्ध होता है कि जब लोग एक जगह एकत्रित होते हैं और उनकी दृष्टि और हाथ परस्पर मिलते हैं, उस समय अन्तःकरण के एक होने का अमूल्य प्रसंग उपस्थित हो जाता है। ज्ञात या अज्ञान रीति से एक दूसरे के विचारों और भावनाओं में अदला बदला हो जाता है और सब लोगों के विचार, मनोवृत्ति और आत्मिक शक्ति एक समान भूमि पर आकर एकत्रित हो जाती है इससे पारस्परिक प्रेम और एकता उत्पन्न होती है। मुहम्मद की चतुरता तो इसी से प्रत्यक्ष है कि उसने उद्दण्ड और लड़ाकू अरबों को प्रति दिन ईश्वर के सन्मुख कम से कम पांच बार उपस्थित होने के लिये वाध्य कर दिया। इस रीति से उसने महान छितर वितर लोगों का एक संगठित राष्ट्र बना दिया।

यज्ञ, तीर्थ, मेले, मंदिर, न्यायालय, भोजनालय, विवाहोत्सव, स्मशान यात्रा, सभा सामाजिक वार्षिकोत्सव, तथा आजकल के सम्मेलन और राष्ट्रीय सभाओं के जलसे, ये सब भारतवर्ष के लोगों को एकत्रित करने के स्थान हैं। इसी प्रकार पश्चिम में गिरजाघर, होटल, प्रदर्शनी, फांसी के प्रसंग, विश्वविद्यालय, सार्वजनिक व्याख्यान, क्लब और राजकीय सम्मेलन इत्यादि योगों से लोग एकत्रित होते हैं। परन्तु विशेष करके उन्हीं जमघटों में एकतावर्धक शक्ति रहती है जिनमें हम सात्विक भाव से मिलते हैं और जहां पर हम एकता रूपी वृक्ष को प्रेम रूपी जल से सींचते हैं। चिरस्थायी एकता वहीं उत्पन्न हो सकती है जहां अन्तःकरण एक होते हैं। केवल शरीरों ही के मेल से कोई उत्साहजनक परिणाम नहीं उत्पन्न होता, बल्कि उलटे वैमनस्य इत्यादि हो बढ़ते हैं।

खींच खांच करके केवल बाहरी एकता करने की कोई आवश्यकता नहीं। जहां अन्तःकरण की एकता नहीं होती वहां की मैत्री स्फोटक पदार्थों के मिश्रण से भी अधिक भयंकर होती है। केवल पैरों ही के हिलाने से दो हृदय एक दूसरे के समीप नहीं आ सकते। हमें केवल इसी बात की चिन्ता और आवश्यकता न होनी चाहिये कि हमारे मित्रगण और अनुयायी सदैव हमें घेरे रहें, वरन जीवन के मूल झरने और उत्पत्ति स्थान से हम जितना सन्निध होंगे, उतने ही मित्र हमको स्वयं मिल जायंगे। बेन का वृक्ष पानी के समीप रहता है और अपनी जड़ें उसी तरफ फैला देता है जिससे बहुत से पेड़ आपही आप पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार हमें भी उस सर्व चैतन्य उत्पत्ति स्थान के समीप रहना चाहिये और हमारे स्वभाव के समान-शील बहुत से लोग स्वयम् उत्पन्न हो जायंगे। प्रथम आवश्यकता केवल इसी बात की है कि तुम सत्य के झरने के निकट खड़े रहो।

दूरबीन के शीशे तभी ठीक काम कर सकते हैं जब उनका नाभिगत अन्तर भी ठीक हो। सूर्य्य की ग्रहमाला के ठीक २ चलने का कारण यह है कि भिन्न २ ग्रहों के ग्रहपथ में प्रमाण-बद्ध अन्तर है। बहुधा ऐसा होता है कि यदि हम अपने कुछ मित्रों के सम्बन्ध को तनिक बढ़ा दें या तनिक कम कर दें तो हम उनके साथ काम नहीं कर सकते। मित्रता की ग्रहमाला में प्रेम-पूरित और स्थाई एकता प्राप्त करने के लिये यह परम आवश्यक है कि परस्पर का आध्यात्मिक अन्तर योग्य रीति से रक्खा जाय। कभी २ ऐसा होता है कि लोग या तो बहुत ही घनिष्ट संबन्ध कर लेते हैं या फिर बिलकुल ही अलग हो जाते हैं। इस भूल का परिणाम यह होता है कि वे प्रत्येक मनुष्य पर अविश्वास और शंका करने

लगते हैं। प्रेम, मेल और एकता उसी समय प्राप्त हो सकती है जब लोगों में योग्य रीति से ठीक २ अन्तर रक्खा जाता है। राष्ट्रीय उत्सवों को सुधार कर ऐसा बनाना चाहिये जिससे सब श्रेणी के लोगों को एक साथ एकत्रित होने का अवसर मिले और धार्मिक वृत्ति में समान-शीलत्व से अपने सहधर्मी ढूंढ कर लोग उनसे एकता प्राप्त करें और इस रीति से प्राकृतिक नियमानुसार परस्पर का योग्य अन्तर बनाये रक्खें। राष्ट्रीय हेमन्तोत्सव दक्षिण भारत के सुखदायक प्रदेशों में, राष्ट्रीय ग्रीष्मोत्सव उत्तर के मनोहर पहाड़ी प्रान्तों में, वसन्तोत्सव बंग देश में, और वर्षा ऋतु का सम्मेलन पश्चिमीय हिन्दुस्तान में होना चाहिये। इन उत्सवों का सम्बन्ध किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष से न होना चाहिये। परन्तु इन को सब श्रेणी के प्रतिनिधियों द्वारा संचालित हो कर राष्ट्रीय रूप धारण करना चाहिये। वहां पर कला कौशल्य की प्रदर्शनी, हर प्रकार की दूकानें, पदार्थ-संग्रहालय, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, क्रीड़ा भवन, व्याख्यानों के लिये मैदान, सामाजिक सभायें, परिषद्, कांग्रेस और राष्ट्रीय नाट्य शालाओं आदि द्वारा भिन्न २ प्रान्तों के अनेकानेक धर्म और पंथ के लोग एकत्र हों और वहां पर जीवन के गंभीर और विनोददायक दोनों अंगों की पूर्ति की सामग्री उपस्थित होनी चाहिये। वहां पर प्राचीन भारत की प्रथा के अनुसार, भगिनी अपने भाई के साथ, पत्नी अपने पति के साथ घूमें फिरें और पुत्र अपनी माताओं का हाथ पकड़े हुये इधर उधर टहलते हुये दिखाई दें जैसा कि वर्तमान समय में बम्बई के लोग करते हैं। इस के साथ ही साथ यह भी हो कि सब श्रेणी के, सब पंथों के और सब धर्मों के वक्ताओं की प्रेममयी

वक्तृता देने के लिये एक समान-व्यास-गद्दी हो। राष्ट्रीय साहित्य का उत्पन्न करना उसकी उन्नति करना, उसका प्रचार करना और वर्तमान जीवित देशी भाषाओं में एकता पैदा करना जातीय एकता उत्पन्न करने का एक दूसरा साधन है।

भिन्न २ स्थानों पर 'ॐ मन्दिर' स्थापित करना चाहिये। उन में सम्पूर्ण धर्मों के लोग स्वतन्त्रता से जायँ, पढ़ें, ध्यान करें, मौन प्रार्थना करें और एक दूसरे को सहानुभूति, कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखें, परन्तु आपस में बात चीत न करें।

युवा पुरुषों को खुले मैदान में व्यायाम करना चाहिये और राम की रीति से प्रत्येक शारीरिक गति को एक आध्यात्मिक भावना सूचक चिन्ह में बदल देना चाहिये। यदि उपरोक्त रीति से काम किया जाय तो आहुति देने से मन की भावना पर जो ईश्वरी मोहर लगती है वही कार्य्य शारीरिक व्यायाम से भी होगा।

स्नान करते समय हमें उत्तम और पवित्र करनेवाले गीत गाना चाहिये; पर वे ऐसी भाषा में न हों जिसे हम समझ भी न सकते हों।

ऋतु के अनुसार तरुण मंडली को नदियों के किनारे हरी घास पर अथवा वृक्षों की छाया में या आकाशछत्र के नीचे एक साथ बैठ कर भोजन करना चाहिये। और प्रत्येक ग्रास के साथ मन और वचन से ओं ओं का उच्चारण करते जाना चाहिये। राष्ट्रीय गीत जिनके शब्द आग बगूला हैं और जिनके विचार चैतन्योत्पादक हैं यदि एक साथ मिल कर गाये जायँ तो वे एकता उत्पन्न करने में जादू का काम करते हैं।

हवन के लिये कृत्रिम अग्नि प्रज्वलित करने की अपेक्षा सात्विक तरुण पुरुषों को चाहिये कि प्रभात काल अथवा सायंकाल के सूर्य्य बिम्ब के तेज ही को, अपने अहंकार को आहुति देने की, होमाग्नि समझें ।

उठो उठो हे शिष्य सकल आलस तज दीजे ।
प्रात लालिमा मध्य उरस्थल मज्जन कीजे ॥

उस तेज के सागर में डुबकी मारो और तेजोमय हो कर बाहर निकलो और अपने दिव्य प्रकाश से सम्पूर्ण जगत को आच्छादित कर दो । इसी का नाम हवन है ।

लोगों में, विशेष करके स्त्रियों और बालकों में (और इस लिये भावी सन्तान में) प्रेम और एकता उत्पन्न करने का एक उत्तम उपाय नगरकीर्तन है अर्थात् गायन और नृत्य करते हुये या अच्छे २ तमाशे दिखाते हुये रास्ते से निकलना और निडर होकर सत्य की जय २ कार मनाना ।

सत्य के लिये देश के किसी नेता पर निर्दयता से अत्याचार होना अथवा किसी धर्मवीर का प्राण लिया जाना सारे देश में एकता उत्पन्न करने में रामबाण का काम करता है । यह जीवन तुल्य मरण, नहीं २ निस्वार्थ का मरण तुल्य जीवन केवल एक ही राष्ट्र को नहीं बल्कि अन्त में समस्त राष्ट्रों को मिला देता है । यदि एक मनुष्य भी ईश्वर में तल्लीन हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र उसके हाथों से एकता प्राप्त कर सकता है ।

जहां पर जवान लोगों को रक्तपात और अग्नि की दीक्षा अर्थात् फौजी शिक्षा दी जाती है वहां पर धैर्य्य, सत्याचरण और स्वार्थत्याग की भावना इत्यादि सद्गुणों का अंकुर जमाया जाता है ।

स्त्रियों, बालकों और मजदूरों की शिक्षा की उपेक्षा करना मानों अपनी रक्षा करने वाली शाखा को काटना है, नहीं २ अपनी राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर कुठार चलाना है।

हे ऋषियों के बीसवीं शताब्दी के वंशजो! यदि तुम अपनी श्रुतियों के उपदेशों को समझते हो तो तुम्हें अपनी स्मृतियों के पंथ और पंक्ति (Class and Creed) वाले संकीर्ण और हानिकारक बन्धनों को अवश्य तोड़ना पड़ेगा। परन्तु यदि तुम अपनी सच्ची आत्मा को नहीं पहचानते और श्रुतियों की कुछ परवाह भी नहीं करते और बीते हुये जाड़े के कपड़े विकट गरमी में पहनने का आग्रह करते हो, तो अपने पूर्वजों की बुद्धि का स्मरण करके ज़रा कृपापूर्वक अपनी स्थिति का अनुभव तो कर लो। मनुष्य शरीर केवल काल बद्ध ही नहीं है वरंच देश बद्ध भी है। काल की दृष्टि से तुम हिमालय के ऋषियों के सच्चे वंशज ही क्यों न हो, परन्तु देश दृष्टि से विचार करने पर यह नहीं हो सकता कि तत्वज्ञानी और कला कुशल विशारद यूरुप और अमेरिका निवासियों के साथ समकालीन होने के कारण तुम्हारा उनका जो सम्बन्ध है उसे तुम न मानों।

प्राचीन उपनिषदों के ज्ञान को अपना अनुवंशिक (मौरूसी) अधिकार समझ कर प्राप्त तो अवश्य कर लो, परन्तु लौकिक बातों में जापान और अमेरिका के व्यवहारिक ज्ञान का सम्पादन करने से और स्वयं उसका प्रयोग करने ही से इस संसार में तुम्हारा निर्वाह होगा। यदि एक ओक के वृक्ष का कोमल पौधा अपने आस पास के जल, वायु, पृथ्वी और प्रकाश से अपने पालन पोषण की सामग्री को एकत्रित नहीं करे और अपने प्राचीन काल के बीज ही का दम भरता रहे

मग्न रहना है तो शीघ्र ही उसका नाश हो जायगा। राम का यह विचार कदापि नहीं कि वह तुम से चाहे कि तुम अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को छोड़ दो। परन्तु राम तुम से यह अवश्य कहता है कि तुम्हें उन्नति करनी चाहिये और भूत और वर्तमान दोनों को स्वीकार करके आगे बढ़ना चाहिये। जिस प्रकार और लोग तुम्हारी प्राचीन ब्रह्म विद्या को अपना रहे हैं उसी तरह तुम्हें भी उनके भौतिक शास्त्र को अपनाना चाहिये।

इतिहास और सम्पत्ति शास्त्र का यह सिद्धांत है कि जिस तरह से एक वृक्ष का बाढ़ फ़लन करने पर अवलम्बित है उसी प्रकार एक राष्ट्र की बाढ़ भी देशान्तर करने पर निर्भर है। हमारा कर्तव्य है कि हम दीन और बेकार भूखे भारत-वासियों को संसार के उन देशों में भेजें जहां की आबादी घनी नहीं है। वहां रहकर कमाने खाने से वे जीवित रहेंगे और उनके द्वारा भारतवर्ष दूर देशों में भी अपनी जड़ें फैला लेगा और वहां भी उसका अड्डा जम जायगा। इस रीति से प्राचीन भारत के आलस्य का नाश होगा और उसका बोझ भी कम होगा, साथ ही साथ हवा को विषैली करनेवाली और हानिकारक कार्बन डाइआक्साइड (carben dioxide) कम पैदा होगी। यदि इस कार्य्य को तुम अपनी खुशी से करोगे तब तो मानो तुमने देवताओं को अपने वश में कर लिया, नहीं तो ईश्वरी नियम का अटल चक्र बिना रोक टोक के चला ही जायगा और जो कोई उसके रास्ते में आयेगा उसको चकना चूर कर देगा। पर यदि तुम अपने को विनाश होने से नहीं बचाते तो परमेश्वर ही तुम्हारी रक्षा करे। अब जैसा तुम्हारी समझ में आवे वैसा करो।

परन्तु परमेश्वर तो तुम पर दया करके प्लेग और दुष्काल से तुम्हें काट छांट कर अवश्य ही ठीक कर देगा । यदि कोई मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग करके सृष्टि के नियमानुसार चलेगा तो वह ज़रूर बच जायगा और उसका ज्ञानयुक्त प्रयत्न प्राकृतिक चुनाव का रूप धारण करेगा और इस रीति से उस मनुष्य को जीवन-कलह से मुक्ति प्राप्त हो जायगी । केवल ऐसा ही आदमी कोरा बच सकता है, अन्य कोई नहीं ।

कुछ लोगों का यह कथन है कि "क्या बिचारे निर्धन बेकार लोग घर से निकाल दिये जायें ?" यह आक्षेप केवल वही लोग करते हैं जिनका गृहसम्बन्धी विचार बहुत संकीर्ण है । अच्छा फिर बताओ कि जिस कोठरी में तुमने जन्म लिया था उससे बाहर क्यों निकलते हो ? और घर छोड़ कर सड़क पर क्यों आते हो ? जिस रीति से तुम भू लोक के बालक हो उसी रीति से स्वर्गलोक के भी बालक हो । तुम स्वर्गलोक के बालक ही नहीं हो वरन साक्षात् स्वर्गलोक हो । तुम्हारा घर सर्वत्र है । एक ही स्थान पर अपनेको न बांधो । वर्तमान समय में यह कदापि नहीं हो सकता कि भारत अपने को सारी दुनिया से अलग रख कर एक कोठरी में बन्द रहे । एक समय ऐसा था जब भारतवर्ष एक पृथक् देश समझा जाता था और ईरान दूसरा देश और मिस्र तीसरा देश इत्यादि । परन्तु आज भाप और बिजली की सहायता से देश काल का बन्धन बिलकुल टूट गया और समुद्र एक रुकावट होने की अपेक्षा एक राजपथ बन गया है । पूर्व समय के शहर मानो आज कल की सड़कें हैं और प्राचीन काल के देश मानो इस समय के शहर बन रहे हैं । और यह सब हाल इस छोटे से पृथ्वी के टुकड़े का है जिसे

संसार कहते हैं। इस लिये तुम्हारी 'स्वगृह" सम्बन्धी कल्पना को विस्तृत करने का समय आ गया है। हे प्रकृति और ईश्वर के बालकों! सब देश तुम्हारे ही हैं और मनुष्य मात्र तुम्हारे भ्राता और भगिनी हैं। भारतवर्ष के गले में जो लाखों भिखारियों का घंटा या डुबाईनेवाला पत्थर बधा है उसकी गुरुता बढ़ाने के बदले समाज के एक उपयोगी कार्यकर्ता होकर जहां तुम अच्छी तरह से रह सकते हो वहीं जाओ। तुम्हें ईश्वर और मानवजाति की शपथ है, जाओ, चले जाओ।

बहुत से लोग भारत के दुःख निवारण को एक राष्ट्रीय प्रश्न समझते हैं परन्तु राम की राय में यह एक अन्तर राष्ट्रीय प्रश्न है। अन्य लोगों के लिये यह केवल देशभक्ति का सवाल हो परन्तु राम के लिये तो यह मनुष्यमात्र का सवाल है। अपने बच्चों को अपनी आंखों के सामने मरते हुए देखने की अपेक्षा यह बहुत अच्छा है कि चाहे वे मुझ से दूर रहें परन्तु जीवित तो रहें। आंखों में प्रेमाश्रु भर कर राम तुम से विदाई मांगता है जाओ प्रणाम।

यदि विदेश में उदर निर्वाह से अधिक कमाई कर सको तो फिर स्वदेश को लौट आना। जिस प्रकार से जापानी युवक व्यवहारिक ज्ञान को पश्चिम से अपने देश में लाये हैं उसी तरह तुम भी अपने देश में लौट कर विदेश में सीखी हुई विद्या से उस को आनन्दित करदो। यदि परदेश में तुम अपने उदर निर्वाह से अधिक कमाई नहीं कर सकते, तो वहीं रहो। और यदि तुम भारत माता के वक्षस्थल पर निरुद्योगी जोंक होकर रहना चाहते हो तो यही अच्छा है कि तुम अरेबियन समुद्र में एकदम कूद पड़ो और वहीं अरेबि-

यन अतिथि सत्कार ग्रहण करते रहो और भारतवर्ष में फिर पैर रखने का नाम मत लो। सच्ची देशभक्ति और पवित्र देशानुराग तुमसे ऐसा ही करने को आग्रह करते हैं।

राम जितना प्यार मनुष्यों को करता है उतनाही इतर प्राणियों को और पत्थरों को भी करता है राम के लिये तो बन्दर उतनेही प्रिय हैं जितने कि देवता। परन्तु वास्तविक बात कुछ और ही है। जो झूठ बोलता है उसकी दशा बहुत शोचनीय है। जानबुल (अंग्रेज़) के चंगुल से जो थोड़ा सा छुटकारा आयर्लैंड निवासियों को मिला, वह इस रीति से मिला कि बिचारे निर्धन आयर्लैंड निवासी हर साल हज़ारों का झुंड बना कर देशान्तर करते हुये अमेरिका में जा बसे।

राम की यह भी इच्छा नहीं कि भारतवर्ष के आलसी मनुष्यों से अमेरिका और अन्य देशों को भर दिया जाए। वस्तुतः स्थिति यह है कि तुम्हारे विदेश गमन करने से उनका भी कल्याण होगा। जो वृक्ष एकही जगह सटकर उगते हैं वे बहुत ही क्षीण और दुर्बल होते हैं। यदि वृक्षों के झुंड में से एक आधा पेड़ मूल सहित उखाड़ कर किसी अन्य स्थान में लगा दिया जाये तो वह एक महा प्रचंड वृक्ष बन जायेगा। यदि तुम विदेश में जाओगे और रहोगे तो तुम वहां के भूषण बन जाओगे। अमेरिका के वर्तमान धनाढ्य लोगों की स्थिति पहले ऐसीही थी और उन में से अधिक बिचारे यूरोप से आकर बसे थे। सब राष्ट्रों का इतिहास पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि देशान्तर करने से लोगों की सामाजिक अवस्था सुधर जाती है।

यज्ञ के सम्बन्ध में एक दो बातें और कहना है। कभी २ यज्ञ का अर्थ 'त्याग' भी किया जाता है। परन्तु इस पवित्र

शब्द त्याग को और कृपा शून्य अजगर वृत्ति अथवा आत्म-घातक दौर्बल्य को एक न समझना चाहिये। निष्ठुर शारीरिक क्लेश कारक वैराग्य का और त्याग का घपला भी न करना चाहिये। ईश्वर के पवित्र देवालय अर्थात अपनी मानवी देह को कुछ भी प्रतिकार किये विना चुपचाप क्रूर मांस भक्षक भेड़ियों को खा लेने देना त्याग नहीं है। अपने को अन्याय और अत्याचार और घोर पाप के हवाले कर देने का तुम को क्या अधिकार है? यदि कोई स्त्री किसी निन्द-नीय कर्म करने वाले जार मनुष्य को अपना पवित्र तन अर्पण करदे तो क्या यह त्याग कहा जा सकता है? कदापि नहीं 'त्याग" का अर्थ है अपना सर्वस्व सत्य के समर्पण करना।

यह अपना शरीर और यह सारा माल व असबाब ईश्वर का है। तुम तो केवल पहरेदार हो, इसलिये उसकी रक्षा करो और अपनी इस पवित्र धरोहर से पाप और अन्याय का मेल न होने दो। अपने को सत्य से भिन्न और पृथक समझना और फिर धर्म का नाम लेकर त्याग करना तो मानो उस वस्तु को अपनाना है जो अपनी नहीं है। यह तो अमानत में ख़यानत है। जो वस्तु अपनी नहीं है क्या उसका दान करना पाप नहीं है? सत्य रूपी जगमगाते हुये सूर्य्य होकर चमको। सत्य स्वरूप बन जावो। केवल यही यथार्थ 'त्याग' है। जरा ठहरो, क्या हम इसे त्याग कह सकते है? क्या सत्य स्वरूप बनना साक्षात ईश्वरी ऐश्वर्य्य नहीं? कैवल्य और त्याग पर्याय वाची शब्द हैं। विद्या और आचरण* उसके बाह्य चिन्ह हैं।

वैदिककाल में भी अहंकार मिश्रित कर्मकांड से मुक्ति

नोट :—जैसे हलवाई की दुकान पर तुलसीदल धरना—अनुवादक

नहीं मिलती थी। मुक्ति तो सदा केवल ज्ञान ही से प्राप्त हो सकती है। वर्तमान समय के वे धर्म भी जो केवल कर्तव्य या स्वार्थ से किये जाते हैं, या गड़बड़ सड़बड़ करके टाल दिये जाते हैं, मनुष्य को पाप और दुःख से मुक्ति नहीं दे सकते। चाहे किसी मनुष्य को पृथ्वी की सारी सम्पत्ति मिल जाये परन्तु अपने आत्मा को (सब का) आत्मा समझे बिना शान्ति कदापि नहीं मिल सकती। संसार के सारे परिवर्तनों और स्थितियों में केवल एक ही उद्देश उपस्थित है और वह आत्म अनुभव है। जब तक किसी मनुष्य का जीवन कृत्रिमता, दृश्य और बाह्य विचार में फंसा रहेगा तब तक प्रत्येक परिवर्तन और सुधार से केवल एक कूड़े करकट का नवीन थरथर (Stratum) ही पैदा होगा और भूमि (वस्तु) तो बिलकुल नहीं दिखलाई देगी। जब तक अनुभव करके यह आरोग्य अवस्था न प्राप्त करली जायगी कि समस्त हमारा ही स्वरूप है, तब तक तुम्हारी सभ्यता का कोरा दिखाव देहाभिमान रूपी दुःख कारक घाव के उपर केवल मरहम पट्टी के समान है। वेदों का ज्ञान कांड ही सच्चा वेद है। हिन्दू धर्म के (षटदर्शन कारों) और जैन और बौद्ध ग्रन्थकारों ने भी इसी का नाम 'श्रुति' रक्खा है। हे हिन्दू लोगों! इसी श्रुति का आश्रय लो। वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार स्मृति और कर्मकांड को बदलो॥ इससे इतना ही नहीं होगा कि तुम अपने हिन्दूपने के अस्तित्व को बनाये रख सको वरंच तुम्हारी वृद्धि भी होगी और तुम सम्पूर्ण जगत के गुरु अथवा पथ प्रदर्शक बन जावोगे। और इसी रीति से तुम्हारी पृथक रखने वाली जड़ता की बीमारी भी दूर हो जायगी और संयुक्त भाव पैदा करने वाली नवीनता प्राप्त हो जायगी। आत्मज्ञान

से रहित होकर कार्य्य करने वाले मनुष्य की अवस्था उस मनुष्य की सी है जो एक अंधेरी कोठरी में कार्य्य करता हो। कभी दिवाल से उसका सर टकराता है, कभी टेबिल से घुटने फूटते हैं। उसे हर तरह की ठोकरें खानी पड़ती हैं। जो मनुष्य प्रकाश में कार्य्य करता है उसे यह दुःख नहीं उठाना पडता। ज्ञान शून्य और ज्ञानवान मनुष्य के कार्य्य में अन्तर इतना है कि एक तो घोड़े की पूछ पकड़ कर सफ़र करता है और रास्ते भर लातें खाता है और दूसरा आनन्द और सुगमता से घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ चला जाता है। (आत्म ज्ञानी) मनुष्य को कोई भी कार्य्य दुष्कर नहीं प्रतीत होता। फूलों की सुगंध उड़ाने में जितनी सुगमता वसंतीबयार को होती है उतनी ही सुगमता से स्थित-प्रज्ञ मनुष्य पर्वत-प्राय कामों को कर सकता है। शंकराचार्य्य जी का कथन है कि "आत्मज्ञानी मनुष्य कोई कर्म नहीं करता"। हाँ ऐसा ही है, परन्तु उस की दृष्टि से। क्योंकि ऐसा कोई भी कार्य्य नहीं है जो उसे कष्टदायक मालूम हो। उसे तो सब कुछ लीला, क्रीड़ा और आनन्द प्रतीत होता है ऐसे कोई काम नही जो उसे अवश्य करना पड़े। वह तो अपनी स्थिति क राजा है। उसे कभी कष्ट नहीं होता। वह कभी उतावला भी नहीं होता। उसे सब काम किया हुआ सा दिखलाई देता है। न उसे उद्वेग होता है और न दुःख। वह सदा धीर उल्लसित और कर्म के ज्वर से मुक्त रहता है।

परन्तु क्या ऐसा मनुष्य आलसी और निरुद्योगी हो सकता है। यदि ऐसे आदमी को निकम्मा कह सकते हैं तो प्रकृति को सुस्त और सूर्य्य को भी आलसी कह सकते हैं। नैष्कर्म (Non-work) के असामान्य दूत शंकराचार्य्य को देखो। क्या तुम सारे इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण

है सकते हो जहां इतने थोड़े काल में एक व्यक्ति के द्वारा इतना अधिक काम हुआ हो ? सैकड़ों ग्रन्थ रच डाले, संस्थायें (मठ) स्थापित करदी, राजा लोगों को स्वमतानुयायी बना लिया, सारे भारतखंड में बड़ी २ सहा सभायें कर डालीं। जिस प्रकार किसी तारे से प्रकाश फैलता है या पुष्प से सुगंध फैलती है उसी तरह उन से कर्म का प्रवाह निकलता था।

राम ब्रह्म यज्ञ के बारे में थोड़ा सा कहे बिना इस विषय को समाप्त नहीं कर सकता। मनु महाराज के कथनानुसार ब्रह्म यज्ञ से आत्मीय यज्ञ को स्वराज्य अर्थात् आन्तरिक प्रतिभा का स्वाभाविक सिंहासन (स्वानन्द साम्राज्य) प्राप्त होना है। अपने सम्पूर्ण ममत्व, आसक्ति मेरे और तेरे की कल्पना, कामना, द्वैत, (राग द्वेष) मनोविकार, मर्ज़ी, आपत्ति, शिष्टाचार, देह, मन, नाते गोते, लेना न्याय अन्याय, कुतर्की प्रश्न, नाम रूप, अधिकार और मोह इत्यादि सब को ज्ञानाग्नि में भस्म कर दो, सब को त्याग दो, सब छोड़ दो। ब्रह्मज्ञान की आग में इन को आहुति रूप से अर्पण कर दो। इन सब को धूप दीप की तरह राख कर दो और जब वे भस्म हो जायें तब 'तत्वमसि' के जलते हुये कुंड में बैठकर उनकी सुगंध का आस्वाद लो।

अपने ब्रह्मत्व को जानकर मोह और दौर्बल्य का त्याग कर दो और इनके पार हो जाओ। स्वात्मनिष्ठ मनुष्य को रास्ता देने के लिये संसार को एक ओर हटना पड़ेगा। या तो तुम जगत के प्रभु बनो नहीं तो जगत तुम्हारे ऊपर अपना प्रभुत्व जमावेगा। संशय करनेवालों और अन्ध विश्वास करनेवालों के लिये कोई आशा नहीं है केवल ऐसे ही लोग शपथ खाते हैं क्योंकि वे अपने 'अहमस्मि' का नाम वृथा

ही लेते हैं। क्या तुम्हें अपने ब्रह्मत्व के विषय में कुछ सन्देह है? संशय करने की अपेक्षा हृदय में बन्दूक की गोली क्यों नहीं मार लेते? क्या तुम्हारा मन तुम्हें धोखा देता है? उसे उखाड़ डालो और निकाल कर फेंक दो। प्रसन्न चित्त होकर सत्य सागर में प्रवेश करो। क्या घबड़ाते हो? किससे भय करते हो?

क्या परमेश्वर से? तब तो मूर्ख हो।
क्या मनुष्य से? तो कायर हो।
क्या (पंच) भूतों से? उनका सामना करो।
क्या स्वयम् से? तो अपने आत्मत्व को जानो।
यह कहो कि मैं ईश्वर हूं।

राम तीर्थ स्वामी।
Ram Tirth Swami.

हिमालय का सौंदर्य्य।

पवित्र गंगा राम की विरह को न सह सकी। मास भर न होने पाया था कि उसने राम को फिर अपने पास बुला लिया सारी सामाजिक सभ्यता को भूल वह उसके ऊपर हर्ष के अश्रु कण बरसाने लगी। प्यारी गंगी! गङ्गोत्तरी में तुम्हारी दिन दिन बढ़ती छवि की छटा और पल पल के चचल कल वल को कौन वर्णन कर सकता है। गोरे २ गिरि और भोले २ देवदार—यही तुम्हारे साथी हैं। उनका सीधा सच्चा स्वभाव कैसा प्रशंसनीय है। वृक्ष तो विशेष कर पारसी कवि की प्रेयसी से उंचाई में बराबरी का दावा करते हैं। और उनकी मधुर २ मरुत तो बस अपूर्व है। वह चित्त को उत्तेजित व उल्लसित और मन को सूना करती है।

यहां पर यह कितना भली भांति मालूम होता है कि "परमात्मा पत्थरों में सोता है। लताओं में श्वास लेता है, पशुओं में चलता फिरता है और मनुष्यों में जीता जागता है।"

जमनोत्तरी से चल कर यात्री लोग गङ्गोत्तरी दस दिन से कम में नहीं पहुंचते। राम जमनोत्तरी से जाने के तीसरे ही दिन वहां पहुंच गया। वह ऐसे रास्ते से गया जिस पर अभी तक किसी मैदान में रहने वाले ने पैर भी नहीं रक्खा था। पहाड़ी लोग इस पथ को छाया पथ कहते हैं। तीन रातें लगातार सुनसान जंगली गुफाओं में बिताईं। न कोई कुटी मिली और न झोपड़ी। यात्रा भर में कोई दो पैर वाला जीव भी न दीख पड़ा।

क्यों—यह मार्ग छाया पथ क्यों कहलाता है? प्रायः साल भर उस में छाया ही छाया रहती है। वृक्षों की छाया? नहीं नहीं। भला ऐसी बेढब उचाई और ऐसी सर्द वायु में वृक्षों का कौन काम? अधिकतर पथ मेघों ही से ढका रहता है। जमनोत्तरी गंगोत्तरी के आस पासवाले ग्रामों के गोपगण अपने २ गुरुडों को चराते हुए हर साल दो तीन महीने काटते हैं। अकस्मात वे लोग वर्फ से ढके हुये बड़े २ पर्वत शिखरों के पास मिले। बन्दर पुन्छ और हनुमान मुख के निकट ही उनसे भेट हुई थी-वही दोनों गिरि शृङ्ग दोनों सरिता स्वसाओं के सोतों को मिलाते हैं। योंही पथ का पता मिला।

फूलों की वहां इतनी घनी उपज है कि सारा पथ का पथ एक ज़री का खेत सा दीख पड़ता है। नीले, पीले, बैंजनी-भांति २ के फूल जंगल में भरे पड़े है। ढेर के ढेर कमल और बनफशे, गुलेलाला और गुल बहार—सौ २ वर्ण

के एक एक फूल; गगलधूर, ममीरा, मीठा तेलिया, सलद मिस्री आदि अनेक रुचिर रंगिनी लताएं; केसर, इत्रसू आदि अपार महा मधुर सुगन्ध से भरे पौधे, भेड़ गहे, तथा तुहिन शीकरों से भरे-गर्भोंवाले गर्वीले ब्रह्म कंवल, इन सबों ने तो गिरिराज को मानो स्वर्ग लोक और मृत्युलोक के स्वामी का प्रमदवन ही सा बना दिया है।

रंग रंग हे रंग! प्रेम सीमा मन हारी,
भाषा परम विराट तुम्हारी है उपकारी।
सुन्दरता का भेद भरा है जिस में सारा,
देखा प्रकृति अतीत अधिक अधिकार तुम्हारा।
ये भाषा के रूप जगत प्रभु को भाते हैं,
वे ही उसके अमित हर्ष को दरसाते हैं।

"गोल चन्द का जीवन फूट २ कर बाहर निकल रहा है।" चारो ओर सुन्दरता ही सुन्दरता बरस रही है। जिधर देखो उधर मरुद्गण निडर होकर खेल रहे हैं। जो मिलता है उसी को वे चुम्बन करते हैं। चटकीले चमकीले फूलों को तो वे खूब ही चूमते हैं। जगह २ पर गंध की धामनियां पवन के प्रवाह पर लहरें लेती हुई राम को ऐसी लग रही हैं जैसे मधुर मनोहर आनन्ददायक गान। मृदु और मधुर-प्रेमियो के विरह विलाप के बुन्दों सी मृदु और उनके मंजु मिलाप की मुसक्यान सी मधुर-वाहित गंध की यहां बेहद बहुतायत है। इन बड़े २ विराट पहाड़ों की चोटियों पर ये सुन्दर २ खेत ऐसे बिछे हुए हैं जैसे कामदार क़ालीनें। देवताओ! यह भला तुम्हारी भोजन की मेज़ें हैं या नृत्य की भूमि? कल कल करते हुये नाले और दरारो और कगारों पर धर धड़ाती हुई नदियां—यह दोनों ही इन दिव्य दृश्यों में उपस्थित हैं। किन्हीं २ चोटियों पर तो

दृष्टि को बिलकुल स्वतंत्रता मिल जाती है। कुछ रोक टोक ही नहीं। बेखटके चारों ओर मनमानी दूर तक चली जाती है। न उसकी राह में कोई स्थूल शैल ही आ खड़ा होता है और न उसके रास्ते को कोई रुष्ट मेघ ही रोकता है। बाज़े २ शिखर वरों को तो नभ भेदी और घनच्छेदी होने का इतना अधिक उत्साह है कि वह रुकना भूल ही सा गये हैं और उच्च से उच्च गगन मंडलों में लुप्त ही से हुये जाते हैं।

नामी महीधरों की महान् महिमा का वर्णन करते हुए उन्न मणिमय अरुणोदय की ओस को भूल जाना उचित न होगा जिसने हमारे पंथ की सुखमा को कुछ कम नहीं बढ़ाया था। अहा! देखो, वह कमलदल से लगा छोटा सा चंचल, चपल, सलिल ओसकण मनुष्य के मन का कैसा अच्छा चिन्ह है। छोटा है, चपल है परन्तु अहा! कितना पवित्र है। कैसा स्वच्छ और चमकीला है। वह सत्य का सूर्य्य वह अनादि दीप्ति का प्रभाव मानों उसी के हृदय में स्थित है। अरे मनुष्य! क्या तू वही छोटा सा जल कण, वही ज़रा सा बुन्द है या तू अनन्त आदित्त है। सचमुच तू वह तनिक सा बुन्द नहीं। तू "ज्योतिषांज्योतिः" ज्योतियों की भी ज्योति है। सब वेद यही कहते हैं। राम यही कहता है। इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि यह तेरा ही तेज और तेरा ही प्रकाश है जो ऐसे २ दिव्य देशों को ज्योति और जीवन से भर देता है। ऊपर नीचे, इधर उधर, चारो ओर तेरा ही तो प्रकाश और प्रतिभावान मूर्त्ति विराजमान है। तूही वह शक्ति है "जो किसी परिमाण की परवा नहीं करती परन्तु छोटे और बड़े सब से काम निकालती है।" तू ही उषः काल

को उसकी मुसकान देता है और तू ही पाटल पुष्प को प्रभा प्रदान करता है ।

अर्ध रात्रि के छटा भरे तारे चमकीले,
प्रात समय के ओस विन्दु समुदाय छबीले ।
जो कुछ सुन्दर औरस्व च्छ है अश कहीं पर,
है तेरा ही नाथ सभी प्रतिविम्व मनोहर ।
तारापति शुभ चन्द्र रात में स्वामी तू है,
संध्या की द्यु ति ओस प्रात में स्वामी तू है ।
शोभा और प्रकाश यहां है जो कुछ भाया,
तूने ही निर्माण किया अरु जगत् सजाया ।
है व्यापक तव तेज वस्तुएं जग की सारी,
कहती हैं चुप चाप "यहां है विश्व विहारी" ।

उसी बाल कृष्ण (गोकलचन्द्र) की यह लत थी कि वह गोपियों का मक्खन चुरा २ कर मन माना खाकर बाक़ी बचा कुचा उन्हीं के बछड़ों और बकरियों के मुंह में लपेट देता था । वे बेचारे जीव जन्तु ही उन अज्ञान गंवारियों के धौल धप्पे सहते और गाली खाते थे । पर यह नन्हा सा प्यारा चोर तो हर बार सफाचट बच जाता था । वही आत्माओं की आत्मा जो चाहती है वह करती है । वास्तव में यह सब कुछ वही मायामय, वही नटवर, वही राम करवा रहा है । परन्तु उसकी माया भी बड़ी अद्भुत है । वही इस मिथ्या आत्मा को अर्थात् इस असत्य अहकार को ज़ाहिर ज़िम्मेदारी में फंसा देती है इस माखन चोर कृष्ण को भोला कहो चाहे नटखट, पर हे पाठक ! तुम भी वही हो । बाजीगर हो चाहे जादूगर हो, राम तुम्हारी भी आत्मा है । जो कुछ है वह तुम्ही में है । एक और अनेक—तुम्हीं सब को भरते हो । इस अकेले पीले शरीर रूपी छोटे से द्वीप ही में तुम

बंधे हुये नहीं हो। नहीं, नहीं तुम किसी के बंधुए नहीं हो। वह अभियुक्त अहङ्कार, वह असत्य आत्मा, तुम्हारी आत्मा नहीं है। तुम एक क्षुद्र बिन्दु नहीं हो। तुम अखंड अगाध महासागर हो।

(बाहरी रूप से मोहित होनेवाले नेत्रों के लिये) राम का वर्तमान निवासस्थान एक सुघड़ आनन्ददायक पहाड़ी कुटी है। उसके इर्द गिर्द एक हरी भरी और सुनसान प्राकृतिक वाटिका है। उससे गंगा का एक सुरम्य दृश्य दिखाई देता है। नारायण और तुलाराम दूसरी जगह रहते हैं। यहां पर राम बूटी बहुत उत्पन्न होती है। गौरैयां और इतर पक्षी दिन भर मनमाना शब्द उच्चारण करते हैं। हवा यहां की निरोग्य है। गंगी का गायन और पक्षियों का गूंजना यहां पर सर्वदा संगीत उत्सव सा बनाये रखते हैं। यहां पर गंगा की घाटी बहुत विस्तीर्ण है। मानों गंगा एक बड़े मैदान में बहती है। परन्तु प्रवाह बहुत ज़ोर का है। तथापि राम ने कई बार उसे तैर कर पार किया है। केदार और बदरी ने बड़े प्रेम से अनेकबार राम बादशाह को आमंत्रित किया है। परन्तु प्यारी गंगा को विरह की कल्पना मात्र से बहुत दुःख होता है और उसका मुखचन्द्र मलिन पड़ जाता है। राम उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहता और न उसे उदास होते हुये देख सकता है।

सुमेरु दर्शन।

जिस समय राम जमनोत्री की गुफाओं में रहता था तो चौबीस घंटे में एक बार मर्चा (एक प्रकार का धान) और आलू खाता था। इससे अजीर्ण हो गया लगातार तीन दिन

तक सात २ बार शौच क्रिया करनी पड़ी। इस अस्वस्थ अवस्था के चौथे दिन बड़े तड़के गर्म झरने में स्नान करके राम सुमेरु यात्रा को निकला और कोपीन के अतिरिक्त शरीर पर न तो कोई वस्त्र था, न जूता, न साफा, न छाता। पांच हट्टे कट्टे पहाड़ी, खूब गरम कपड़े पहने हुये उसके साथ हो लिये। नारायण और तुलाराम नीचे घरसाली को भेज दिये गये थे।

आरम्भ में हमें नन्ही सी यमुना को तीन चार बार पार करना पड़ा। फिर पैंतालीस गज़ ऊंचा और डेढ फरलांग लंबा एक वर्फ़ का प्रचण्ड ढेर दिखलाई दिया, जिस ने यमुना की घाटी को रोक रक्खा था।। दोनों तरफ़ दो सीधी दीवारों की तरह पहाड़ खड़े थे। क्या इन्हों ने आपस में सलाह करली है कि राम बादशाह को आगे न बढ़ने देंगे॥? कुछ परवा नहीं। वज्र प्राय दृढ़ निश्चय के सामने सारी रुकावटों को भागना पड़ता है। पश्चिम की तरफ की पहाड़ी दीवार पर हम लोग चढ़ने लगे। कभी कभी हमें अपने पैर टेकने के लिये कुछ भी आधार न मिलता था। सुवासित परन्तु कटीले गुलाब की झाड़िओं को पकड़ कर और 'चा' नामी पहाड़ी और कोमल घास के सहारे अपने अंगूठों को टिका कर हमें अपने शरीर को सम्हालना पड़ता था। किसी २ समय हम में और मृत्यु में केवल एक इन्च का अन्तर रह जाता था। यदि हम में से किसी का पैर ज़रा भी फिसलता तो उसका यथायोग्य स्वागत करने के लिये एक बड़ा गहिरा गढ़ा यमुना की घाटी में वर्फ़ का शीतल विस्तर विछाये हुये, क़बर की तरह मूंह खोले खड़ा था। नीचे से यमुना का कल कल करता हुआ शब्द मन्द मन्द सुनाई देता था। मानो ढकी हुई ढोलक से शोक गीत की ध्वनि आ रही है। इस तरह से पौन घंटे के लगभग हम को मौत के जावड़े में चलना पड़ा।

सचमुच वह एक विलक्षण ही स्थिति थी। एक तरफ़ तो मृत्यु मूंह खोले खड़ी थी और दूसरी ओर प्रफुल्लित और उल्लसित करने वाली सुगंधयुक्त वायु थी। इस विकट और विचित्र साहस से हम अन्त में उस प्रचंड बर्फ़ के ढेर के पार पहुंचे। यहां से यमुना का साथ छूट गया। और सारी मंडली ने एक सीधे पर्वत पर चढ़ाई की। न वहां कोई रास्ता था न पगडन्डी। एक खूब घने वन से होकर निकले। वहां पर हम वृक्ष की लकड़ियों को भी नहीं देख सकते थे। राम की देह कई जगह खुरच गई। इस ओक और मर्च वृक्षों के वन में एक घंटा दौड़ धूप करने के पश्चात हम लोग खुले मैदान में पहुंचे। जहां छोटे २ वृक्ष उगे हुये थे। हवा बदली हुई थी परन्तु मधुर सुवास से भरी हुई थी। इस चढ़ाई से पहाड़ी लोग हांपने लगे। राम के लिये भी वह एक अच्छा व्यायाम हो गया। अस्सी फुट या उससे भी अधिक उतार चढ़ाव चढ़ना पड़ा। ज़मीन बहुत करके फिसलनी थी। परन्तु चारों ओर के सुन्दर दृश्य, मनोहर (पुष्प समुह) और हरियाली की भरमार ने मार्ग की कठिनता को भुला दिया। युरोपियन बाग़वान, कम्पनी बाग़ों को सुशोभित करने के लिये यहां से फूलों के बीज ले जाते हैं। और अंग्रेज़ी बोलने वाले अज्ञान हिन्दुस्तानी तरुण इन को विलायती फूल कहते हैं। परन्तु अधिकांश फूलों में एक अद्भुत बात यह है कि जब यह किसी दूसरे स्थान पर लगाये जाते हैं तो उनमें सुगन्ध नहीं रहती यद्यपि उनका रंग पूर्ववत ही बना रहता है।

यूरोपीय शिक्षा में चूर तरुण गण अपने यूरोपीय अध्यापकों के लिखे हुये ग्रन्थों में वेदान्त को प्रतिध्वनि मात्र पढ़ कर यह समझ लेते हैं कि ये पाश्चात्यिक कल्पना हैं। और इन पर लट्टू हो जाते हैं परन्तु इन बेचारों को यह मालूम

ही नहीं है कि वह कल्पना रूपी कुसुम जिन पर वे इतने मोहित हो गये हैं उनकी ही मातृभूमि से ले जाकर वहां लगाये गये हैं। अन्तर केवल इतना है कि युरोपीय अध्यापकों के हाथ में जाने से इन दिव्य फूलों में त्याग रूपी सुगंध नहीं रहती। युरोपिअन लोगों के प्रतिपादित किये हुये वेदान्त में तत्वज्ञान का बाहरी रंग और आकार तो अवश्य रहता है परन्तु अनुभव रुपी सुगंध नहीं रहती।

"अक्स गुल में रंग है गुल का वो लेकिन बू नहीं"

राम की अस्वस्थता का क्या हाल हुआ? राम उस दिन बिलकुल अच्छा हो गया। न कोई बीमारी थी, न थकावट थी, न और किसी प्रकार की शिकायत थी, उन पहाड़ियों में से कोई भी राम से आगे न जा सका। हम सब बराबर चढ़ते चले गये। और मंडली के प्रत्येक मनुष्य को खूब क्षुधा लगी। इस समय हम लोग ऐसे प्रदेश में पहुंच गये थे जहां मेघ जलरूप वृष्टि कभी नही करता परन्तु यथेच्छ वर्फ रूप से गिरता है।

इस ऊंचे, ठन्डे और रुक्ष पर्वत पर वनस्पति का नाम तक न था। हमारे आने के ज़रा पहले वहां पर नवीन वर्फ़ की वृष्टि हुई थी।

राम के बैठने के लिये एक बड़ी शिला पर एक लाल कम्बल बिछाया गया। और रात्रि के उबाले हुये आलू उसको खाने के लिये दिये गये। संगी साथियों ने अपने सादे भोजन को बड़ी कृतज्ञता से खाया। वर्फ़ के (चम चमाते) हुये और हलके हलके टुकड़ों ने खूब अच्छा (ठोस) पानी का काम दिया। भोजन करने के पश्चात् हम लोग फिर चल पड़े। धीरे धीरे हम लोग आगे और ऊपर चढ़ते ही गये। इस में

से एक जवान थक कर गिर पड़ा। उस का दम फूल गया और उसके पैरों ने उसे आगे ले जाने से इनकार किया। वह कहने लगा कि मुझे चक्कर आता है। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया। थोड़ी ही दूर आगे गये थे कि एक साथी और मूर्छित होकर गिर पड़ा और कहने लगा कि मेरा सिर बड़े ज़ोर से घूमता है। कुछ काल के लिये उसे भी वहीं छोड़ा और शेष सब लोग आगे बढ़े। थोड़ी देर के पश्चात् तीसरा साथी भी थक रहा। उसकी नाक से खून निकलने लगा। दो बचे हुये साथियों को लेकर राम फिर आगे बढ़ा।

तीन सुन्दर 'बरार' अर्थात् पहाड़ी हरिण हमारे सामने से जाते हुये दिखलाई दिये।

चौथा साथी किंचित पीछे चलने लगा और अन्त में एक बर्फाच्छादित पत्थर पर गिर पड़ा।

आस पास कहीं पतला (Fluid) पानी नहीं दिखाई देता था परन्तु जहां वह मनुष्य पड़ा था वहां पत्थरों के नीचे से बड़े ज़ोर की घड़घड़ाहट सुनाई देती थी। राम के साथ इस समय भी ब्राह्मण था। वह एक लाल कम्बल, एक दुर्बीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिये हुये था। श्वासोच्छ्वास करने को वायु बहुत सूक्ष्म होगई थी। जिस समय यहां पर दो गरुड़ पक्षी हमारे सिर के ऊपर उड़ते हुये निकल गये तो हमें बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ। अभी हमें एक गहरे नीले रंग की पुरानी बर्फ़ से ढकी हुई, दुखदाई शिला चढ़ना बाक़ी था। उस फिसलनी बर्फ़ में पांव टेकने का आधार मिलने के लिये मेरा साथी सीढ़ियां बनाने लगा। परन्तु वह पुरानी बर्फ़ इतनी कड़ी थी कि उस बेचारे की कुल्हाड़ी टूट गई। उसी समय हमें एक बर्फ़ के तूफ़ान ने आ घेरा। राम ने

अपने साथी को यह कह कर धैर्य धराया कि 'इस वर्फ़ के गिरने से हमारा अहित होने की अपेक्षा हित होनाही ईश्वरी उद्देश है'। और ऐसा ही हुआ भी। उस भयंकर वर्फ़ वर्षा ने हमारे मार्ग को सुगम बना दिया। नोकदार जंगली लकड़ियों की सहायता से हम उस ढालू चट्टान पर चढ़ गये। और फिर जो कुछ हमने देखा उसका क्या कहना है। बस हमारे सामने एक खूब लम्बा चौड़ा सपाट और विस्तीर्ण मैदान वर्फ़ से ढंका हुआ उपस्थित था। जिसे देख कर आंखें चौंधियाती थीं और चारों ओर रुपैहली वर्फ़ की शुभ्र ज्योति जगमगाती थी। आनन्द! आनन्द! क्या यह दैदीप्यमान भास्वत् दिव्य और अद्भुत क्षीरसागर तो नहीं है? राम के अद्भुत आनन्द की कुछ सीमा न रही। बस कन्धे पर लाल कम्बल और पांव में कानविस का जूता पहने हुये राम बड़े वेग से वर्फ़ पर दौड़ने लगा।

इस समय राम के साथ कोई भी नहीं है ("आखिर के लई हंस अकेला ही सिधारा")

लगभग तीन मील के वह वर्फ़ पर वड़े वेग से चला गया। कभी कभी पांव फस जाते थे और विशेष कष्ट उठाये विना बाहर नहीं निकलते थे। अन्त में एक वर्फ के ढेर पर वह लाल कम्बल विछाया और संसार के गड़बड़ व उत्पात से मुक्त, जन समूह के कोलाहल और क्षोभ से दूर, अलिप्त, अकेला, राम उस पर विराजमान हुआ। वहां पर बिलकुल सन्नाटा था। पूर्ण शांति का वहां पर साम्राज्य था घनघोर अनहद ध्वनि के अतिरिक्त वहां पर कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। धन्य है वह शान्ति और एकान्त!

मेघपटल कुछ कुछ खुल चले। महीन बादलों से छन छन कर सूर्य की किरणें उस दृश्य पर पड़ने लगीं। और

रुपैहले वर्फ़ अब तप्त सुवर्ण सी दिखाई देने लगी। इस स्थान का जो सुमेरु या हेमाद्रि नाम है वह बिलकुल यथार्थ है।

हे सांसारिक मनुष्यो! यह अच्छी तरह समझ लो कि तरुण युवतियों के कपोलों की आरक्त छटा, या दिव्य रत्नों और सुन्दर आभूषणों अथवा बड़े बड़े प्रसादों में सुमेरु की कल्पनातीत रमणीयता और मोहकता का यत्किंचित अंश भी नहीं मिल सकता। और जब तुम अपने आत्मस्वरूप का अनुभव कर लोगे तो ऐसे २ असंख्य सुमेरु तुम्हें अपने आप में दिखाई देंगे। सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारी सेवा करेगी। मेघों से लेकर एक साधारण कंकड़ तक श्याम रंग आकाश से लेकर हरी भरी पृथ्वी पर्यन्त और गरुड़ से लेकर छछूंदर तक, जितने जीव संसार में हैं सब तुम्हारी आज्ञा मानने को तय्यार रहेंगे। कोई देवता भी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकेगा।

हे नभ! अब तू निर्मल हो जा। हे भारतवर्ष पर अज्ञान के आच्छादित मेघो! दूर हो जावो। इस पवित्र भूमि पर अब अधिक मत मंडलावो। हे हिमालय की वर्फ़! तुम्हारा स्वामी तुम्हें यह आज्ञा देता है कि तुम अपनी पवित्रता और सत्यनिष्ठा (ज्ञाननिष्ठा) को क़ायम रक्खो। द्वैतभाव से कलुषित बादल कभी इस क्षेत्र-मैदान में मत भेजो।

अस्तु, मेघ विदीर्ण होगये। सारी वर्फ़ ने भगवा रङ्ग धारण कर लिया! क्या पर्वतों ने सन्यास ग्रहण कर लिया है? सचमुच उन्हों ने राम के सेवकों की वर्दी पहन ली है। क्या ही अद्भुत बात है? पर्वतों की वर्फ़ राम का सन्देशा ले जाने के लिये बड़ी आतुरता से उसका मूंह निहार रही है।

आ हा हा ! आनन्द ! वाह ! आनन्द महा है ।
दिव्य गोल संसार दृगों को लुभा रहा है ॥
जग से इसका भेद नौगुना छिपा हुआ है ।
यद्यपि हो असमर्थ दार्शनिक जन तो क्या है ॥
बतलाने में भेद भ्रमाकुल इसके मन का ।
(बतलाता हूं तुम्हें एक गुर सच्चेपन का) ॥
मिलकर धड़के हृदय प्रकृति का और तुम्हारा ।
उदय अस्त पर्य्यन्त तुरत खुल जावे सारा ॥

एक अमेरिकन साधू का कथन है कि सृष्टि एक कल्पना का अवतार अर्थात् रूपान्तर है। और जिस तरह वर्फ़ से भाप और पानी बन जाते हैं उसी प्रकार सृष्टि भी कल्पना रूप होती जाती है। यह संसार मन का स्थूल रूप है। परन्तु यह चञ्चल स्थूल रूप पतला होते २ पुनः स्वतंत्र कल्पना में विसर्जित हो जाता है। और इसी से सेंद्रिय अथवा निर्द्रिय प्राकृतिक पदार्थों का मन पर अधिक और उत्तम प्रभाव पड़ता है। बद्ध संकुचित और देहधारी मनुष्य विदेहमनुष्य से वार्तालाप करता है।

प्रश्न—यदि यह जगत मेरी ही कल्पना है (अर्थात् मन या कल्पना का स्थूल रूप है) तो वाह्य पदार्थ मेरी इच्छा के अनुसार क्यों नहीं बदल जाते?

उत्तर—गौड़पादाचार्य्य कहते हैं:— स्वप्न सृष्टि में केवल कल्पना ही के दो पक्ष हो जाते हैं। एक पक्ष में तो वाक्य जड़ पदार्थ होते हैं और दूसरे पक्ष में अन्तः करण की वृत्ति, इच्छा इत्यादि। ऐसी स्थिति में अन्तःकरण के विचार अपने आधीन और परिवर्तनशील होते हैं। और जब उनकी तुलना जड़ पदार्थों से की जाती है तो मिथ्या प्रतीत होते है। परन्तु

बाह्य पदार्थ स्वतंत्र, शाश्वत और सापेक्षित रीति से स्वयम् सिद्ध मालुम होते हैं।

परन्तु वस्तुतः जागृत मनुष्य की दृष्टि से स्वप्न के सत्य और असत्य, बाह्य और आन्तरिक, दोनों ही भाग केवल काल्पनिक हैं वे हमारी ही कल्पना हैं और हमीने उन को उत्पन्न किया है। इसके अतिरिक्त जागृत अवस्था में मनुष्य स्थूल प्रत्यक्ष जड़ पदार्थ में और अप्रत्यक्ष कल्पना में स्पष्ट भेद कर सकते हैं। परन्तु स्वात्मानुभवी मनुष्य को सम्पूर्ण स्थूल पदार्थ और परिवर्तनशील कल्पना दोनों ही वस्तुतः स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होते हैं। और जब तक वे पदार्थ भासित होते रहते हैं वे केवल उसको कल्पना ही स्वरूप से उस मनुष्य पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। और यदि वे उसकी इच्छानुसार परिवर्तित नहीं होते तो भी वे हैं तो उसी की कल्पना। तुम्हारे बालों की बाढ़ का या तुम्हारे मुखारविन्द की प्रफुल्लिता का कारण यद्यपि तुम्हारी बुद्धि नहीं बता सकती तोभी केश और चेहरे को तुम अपनाही समझते हो। उसी तरह से जीवनमुक्त अपने ही आत्मा को सबका आत्मा जानकर प्रत्येक पदार्थ को अपना ही स्वरूप समझता है। वह साक्षात प्रेम की मूर्ति बन जाता है। और जब उस की 'एकमेवाद्वितीयं' ब्रह्म भावना सिद्ध हो जाती है तब उसके लिये दृश्य और काल्पनिक भासमान भेद दोनों आपही आप मिट जाते हैं।

माया।

मशाल का घुमाना य मरहटी ज्वाला (अलात चक्र) का प्रयोग भारतवर्ष के अधिकतर भागों में अप्रचलित नहीं है। वह जगमगाती हुई ज्वाला कभी तो प्रकाश के एक बड़े चक्र

के सदृश दिखाई देती है, कभी अग्नि की एक अटूट रेखा के तुल्य मालूम होती है और कभी अंडाकार हो जाती है, कभी ऊपर जाती है पुनः नीचे आती है अर्थात् इसी प्रकार यह बड़े मज़े के साथ अनेक रूप धारण करती है। तो क्या यह सब आकार उस ज्वाला (ज्योति) में वास्तविक रूप से होते हैं? क्या वे मशाल से निकलते हैं? या वे बाहर ही बाहर अपने आप बन जाते हैं? जब मरहटी (बनैठी) नहीं घुमाई जाती तो क्या वे आकार उस में प्रवेश कर जाते हैं? या वे कहीं और चले जाते हैं? इन सब प्रश्नों का उत्तर 'न' ही में देना पड़ता है। जिस समय मशाल घूमती है उस वक्त सीधी और टेढ़ी लकीरें उत्पन्न होती हैं। और जब घूमना बन्द हो जाता है तब मशाल में उन आकारों का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता। जिस समय मशाल खूब ज़ोर से घूमती है और यद्यपि वे रेखायें प्रत्यक्ष दिखलाई देती हैं तो भी वे वास्तविक नहीं होतीं।

उसी तरह शुद्ध ज्ञप्ति (Absolute consciousness) स्थिर हुये मशाल के अनुसार नामरूप (दृश्य जगत) के संपर्क से अलिप्त है। और जब नाम रूपादि नानात्व आपित होते हैं तो वे आभास केवल फिरने वाली मशाल के आकार की तरह मायिक होते हैं। ज्ञप्ति सदैव उनसे अलिप्त और अविकृत रहती है। वह अखंड ज्योति सम्पूर्ण दृश्यों में विद्य-मान रहती है। परन्तु ज्योति में दृश्य कभी नहीं रहते। इसी प्रकार सब नाम रूपों में 'राम' तो रमता है परन्तु राम में नाम रूप केवल नश्वर अथवा मायिक होते हैं। जैसे फिरने वाली मशाल से उत्पन्न होने वाले भासमान आकारों का अस्तित्व केवल उसके भ्रमण करने ही पर अवलंबित होता है, उसी तरह से नाना प्रकार के नाम रूपों का (जिन पर

जगत का आधार है) भासमान असतित्व, माया शक्ति पर निर्भर है।

शक्ति का कहीं स्वयं अस्तित्व नहीं होता। वह दृश्य किंवा अदृश्य हो सकती है, परन्तु वह अलग नहीं रह सकती। यह माया शक्ति किसी व्यक्त ज्ञप्ति की स्फूर्ति अथवा मन के स्वरूप में दिखलाई देती है। संकल्पविकल्पात्मक मन और दृश्य जगत दोनों एकही वस्तु के पेट और पीठ हैं। संकल्प शून्य और स्थिर मन और शुद्ध ज्ञप्ति अर्थात् केवल ब्रह्म एक ही है। यदि मन की वासनायें और आसक्ति रूप मैल निकाल डाला जाय तो मन चचलता दूर हो जाती है और उस में स्थिरता आ जाती है। पूर्ण स्थिरता प्राप्त हुई कि मानो मन ब्रह्म स्वरूप हो गया। इस साक्षातकार से माया पराजित हो जाती है। यह जगत नन्दन वन हो जाता है। और अपना गया हुआ स्वानन्द साम्राज्य तत्काल फिर प्राप्त हो जाता है। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द मालूम होता है। द्वैत भाव समूल नष्ट हो जाने पर सम्पूर्ण भय और चिन्ता उस अखंड सत-चित-आनन्द स्वरूप में सर्वदा के लिये लिप्त हो जाती हैं।

राम के सामने एक युवा पुरुष ने सुंघने के लिये एक गुलाब का पुष्प तोड़ा। ज्योंही वह उसे अपनी नाक के पास ले गया त्योंही एक मधुमक्खी ने उसकी नाक की नोक में काट खाया। वह मनुष्य मारे दर्द के रोने लगा और पुष्प उसके हाथ से गिर पड़ा।

क्या प्रत्येक गुलाब की पंखड़ी में मधुमक्खी होती है? अवश्यमेव। ऐसा कोई भी विषयोपभोग रूपी गुलाब नहीं है जिस में दुःख रूपी मधुमक्खी न छिपी हो। बेरोक वासनाओं को वेदना रूप दंड मिलना आवश्यक है।

हे महाविस्मरणशील लोगों ! अपने आत्मस्वरूप को मत भूलो। इसी बनावटी गुलाब को तोड़ने की तुम्हें कुछ आवश्यकता नहीं। क्योंकि जहां जहां प्रफुल्लित गुलाब है वहां वहां तुम उपस्थित हो और उसका मोहित करने वाला रूप रमणीय सुगंध तुम्हारी ही है। यदि राजा को देखो तो उसका सम्पूर्ण वैभव तुम्हीं से है, सौंदर्य्य को देखो तो उसकी रमणीयता भी तुम्हीं हो, और स्वर्ण व रत्नादि को देखो तो उनकी उज्वल प्रभा भी तुम्हीं हो। इस लिये खाली वासनाओं को वृथा अपने मन में क्यों लाते हो? सर्वात्मा के साथ अपनी आत्मा की ऐक्यता को पहचानो। परमात्मा के साथ अपना अभेद अनुभव करो। तुम वही कृष्ण भगवान हो जिन्हों ने एक ही समय सहस्रों गोपियों के हाथ में हाथ डाल कर रासलीला की थी। समुद्र में और राजमन्दिर में, वन में और उपवन में, रणभूमि में और अन्तःपुर में अर्थात् सब जगह और सब काल में तुम बराबर उपस्थित हो।

राम सब से ऊंचे पर्वत पर खड़ा होकर घोर गर्जन के साथ कहता है कि 'दरिद्रता और दौर्बल्य की शिकायत करने वाले लोगो! सच मुच तुम सर्वशक्तिमान प्रभू हो, स्वयं 'राम' हो अपनी ही कल्पनाओं में स्वयम् मत जकड़ जाओ। उठो जागृत होओ और अपनी निद्रा और संसार रूपी स्वप्न को झाड़ कर अलग फेंक दो। जब तुम्हीं सब कुछ हो तो वृथा दुःख और दरिद्रता में क्यों फंसे पड़े हो। अरे ज़रा उठो और निज स्वरूप को पहचान लो। यह सब दुःख दरिद्र अपने आप ही लोप हो जायगा। सारे सुखों को खान और सम्पूर्ण आनन्द की आन्तरात्मा तुम्हीं हो। कोई वस्तु तुम्हें हानि नहीं पहुंचा सकती। ज़रा राम की ख़ातिर से अपनी आत्मा को पहचानो। विलम्ब क्यों करते हो? उसे यथार्थ

रूप से पहचानो। तुम रातदिन अविश्रांत श्रम से और बड़े उत्साह से सुख के ढूंढने में लगे हुये हो परन्तु इस काम में तुम्हें सदैव निराशा ही होती है। ऐसे मूर्ख मत बनो। इन्द्रियों के विषयों में सुख को मत ढूंढो। हे इन्द्रियों के दास अपनी इस सुख की निष्फल और बाहिरी खोज को छोड़ दो। अमरत्व का महासागर तुम्हारे अन्दर है। स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है। तुम अमृत के भी अमृत हो। मन और संसार को परमात्मा स्वरूप में लय कर दो अपने क्षुद्र अहंकार को त्याग कर पवित्र मस्ती में आजाओ। हे प्रियवर्गो इस नश्वर शरीर के कार्टून की इतनी चिन्ता क्यों करते हो। इस बात की तनिक भी चिन्ता न करो कि इन अनात्मा का परिणाम क्या होगा। सारे नाते गोते के मिथ्या विचारों को दूर करो। जो आखें ईश्वर को नहीं देखतीं यदि वे फूट जायें तो अच्छा है! धिक्कार है उस अन्तःकरण को जो वासना रूपी बीमारियों को धारण किये हुये हैं। अपने आसुओं से सारी नास्तिकता को धो डालो। अपने वास्तविक स्थान पर अच्छी तरह डटे रहो। निन्दा या स्तुति का वहां गम्य नहीं है। साधारण सुख और दुःख से वहां कोई बाधा नहीं हो सकती। ईश्वर को अपनी नौका में बैठालो और सम्पूर्ण सुखों को जाने दो। अहंकार को त्यागकर किनारे और बादबान को छोड़ दो। ऐसा करो कि ईश्वर भक्ति रूपी वायु इस क्षणभंगुर नर देह रूपी नौका के अहंकार रूपी बादबानों को उड़ा ले जाये। और ले जाकर परमात्मा रूपी महासागर में छोड़ दे। भक्ति रस के नशे में जो लोग डूबे हैं वे बहुत सुखी हैं। धन्य हैं वे लोग जिन्हें ईश्वरी मस्ती का घनघोर नशा चढ़ा हुआ है। वे मनुष्य पूजनीय हैं, जो सांसारिक दृष्टि से विनाश हो कर शुद्ध आत्मानन्द में पूर्णतया निमग्न हैं।

ॐ

किन्तु पदार्थ अपार जगत के, हुवे अभी जो हैं अब होंगे ।
तू है सबका मूल विधाता, तूही पिता तुही है माता ।
जगत मूल प्रभु तेरी जय हो ! सकल केन्द्र विभु तेरी जय हो !
देव गणित में एक पता है, तुझ से ही यह सभी बना है ।
बना जौन कुछ सोभी तू है, करे प्रकाश प्रभा को तू है ।
हो जो प्रकासित सोभी तू है, है जो दर्शित सो भी तू है ।
है जो वस्तु अदृष्ट अपने आप प्रकाश से
सोई है उत्कृष्ट तू है पूरन ब्रह्म शिव ।

आवश्यकता है ।

सुधारकों की
दूसरों का सुधार करने वालों की नहीं
परन्तु अपना सुधार करने वालों की
जिन्होंने प्राप्त किया है
विश्वविद्यालय की डिगरियां नहीं
परन्तु अपने अहंकार पर विजय
आयुः ब्रह्मानन्द की युवा अवस्था
वेतनः ब्रह्मत्व
शीघ्र प्रार्थना पत्र भेजो
'भिक्षामिदेहि' के शब्दों के साथ नहीं
परन्तु अधिकारपूर्ण फ़ैसले के साथ—
विश्व के स्वामी को
अर्थात् अपने आत्मा को ।
ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

श्रीस्वामी रामतीर्थजी के संन्यासोपलक्ष में लिखित एक कविता ।

युवा संन्यासी ।

गुण-निधान मतिमान सुखी सब भांति एक लवपुर-वासी ।
युवा अवस्था बीच विप्रकुल-केतु हुआ है संन्यासी ॥
विविध रीति से उस विरक्त को सुहृद् बन्धु समुझाय थके ।
गङ्गाजी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके ॥ १ ॥
वृद्ध पिता-माता की आशा, बिन ब्याही कन्या का भार ।
शिक्षा-हीन सुतों की ममता, पतिव्रता नारी का प्यार ॥
सन्मित्रों की प्रीति और कालिज वालों का निर्मल प्रेम ।
त्याग, एक अनुराग किया उसने विराग में तज सब नेम ॥ २ ॥
"प्राणनाथ ! बालक सुत दुहिता"—यों कहती प्यारी छोड़ी ।
"हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !!" यों रोती महतारी छोड़ी ॥
चिर सहचरी "रयाड़ी" छोड़ी रम्य तटी रावी छोड़ी ।
शिखा-सूत्र के साथ हाय ! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ॥ ३ ॥
धन्य पञ्चनद भूमि जहां इस बड़भागी ने जन्म लिया ।
धन्य जनक-जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया ॥
धन्य सती जिसका पति मरने से पहिले हो जाय अमर ।
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर ॥ ४ ॥
शोक ग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई विदाई जब ।
द्रवीभूत कैसे न होय मन ? संन्यासी हो भाई जब ॥
किन्तु, अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने "मङ्गल तव मारग हो ।
जीवन् मुक्ति सहाय ब्रह्म-विद्या में सत्वर पारग हो ॥ ५ ॥
कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर कहा, कि "प्यारे ! सुन लेना ।
बात अन्त की आज हमारी ज़रा ध्यान इस पर देना ॥
समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था ।
इस कारण यह विद्या-बल में जग से न्यारा लगता था ॥ ६ ॥

सर्व त्याग कर महा-भाग जो देशोन्नति में दे जीवन।
धन्यवाद देते हैं देवगण भी उसका हो प्रमुदित मन॥
अपनी भाषा भेष-भाव औ भोजन प्यारे भाइन को।
नहीं समझता उत्तम, समझो उससे भली लुगाइन को॥ ७॥
"एवमस्तु" कर उच्चारन इन सब के उसने उत्तर में।
कहा "अलविदा" और चला वह मनभावन उस औसर में॥
लगे वर्षने पुष्प और जय जय की तब हो उठी ध्वनी।
मानो भिक्षुक नहीं, वहां से चला विश्व का कोइ धनी॥ ८॥
ज्यों नगरी में होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट।
त्यों वन पर्वत प्रकृति-परिष्कृत हुए समझ मानो सम्राट॥
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से वारिद ने जल छिड़क दिया।
कड़क तड़ित ने दिई सलामी आतपत्र वृक्षों ने किया॥ ९॥
विहङ्ग कुल ले निज कल-रव से उसका स्वागत गान किया।
श्वापद शान्त हुए मृग गण ने दक्षिण में आ मान किया॥
श्रेणाबद्ध फलित तरुओं ने उसको झुक कर किया प्रणाम।
पुष्पित लता और बिरवों ने कुसुम दिखाए राह तमाम॥ १०॥
खड़ा हिमालय निज उन्नत पर मस्तक तत्पद धारन को।
हुई तरङ्गित सुर धुनि तब अभिषेक पुनीत करावन को॥
शिक्षा देती मानो सब को जननी-सदृश प्रकृति सारी।
विषय-विरक्त-ब्रह्म चिंतन-रत नर के सब आज्ञाकारी॥ ११॥

—एक बिहारी

(कविता-कुसुम माल से उद्धृत)

हिन्दी साहित्य रत्नाकर कार्यालय

मुज़फ्फ़रपुर (बिहार।)

ने मातृभाषा की सेवा पर कमर बांधी है। 'सत्य-ग्रन्थ-माला' की प्रसिद्ध पुस्तकें हमारे यहां मिलती हैं। नई नई पुस्तकें छपने के लिए हमने एक प्रेस भी खोला है। हमारी इच्छा शुद्ध साहित्य प्रचार करने की है। उत्तम उत्तम पुस्तकें लिखिये। हम से पत्र व्यवहार कर पुरस्कार ठहराइये। हम आप की सेवा करने को उद्यत हैं। हमें मिलकर कार्य्य करना है। 'सत्य-ग्रन्थ-माला' का स्टाक तथा कापी राइट हमने खरीद लिया है। आप हम से पुस्तकें मंगाइये। कमीशन काफ़ी दिया जाता है। दुकान्दारों से खास रियायत है। विद्यार्थियों से स्वामी सत्यदेव जी कृत ग्रन्थों के सेट का दाम कुछ कम लिया जाता है। विद्यार्थियों को चाहिये कि अपने ज़िले में 'सत्य-ग्रन्थ-माला' के प्रचार का प्रवन्ध करें। इस से बढ़कर देश सेवा वे कर नहीं सकते।

निवेदक,

मैनेजर 'हिन्दी-साहित्य-रत्नाकर' कार्य्यालय

मुज़फ्फ़रपुर (बिहार।)